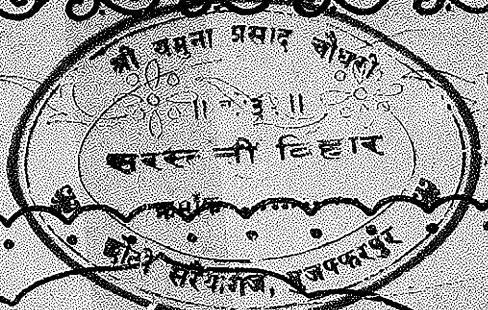

ओंकार उपासना

प्रयोगिरा

स्वामी सत्यानन्द महाराज

सम्पादक—

ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम' एम०ए०

[सम्पादक 'तपोभूमि']

मूल्य २५ पै०

सत्य प्रकाशन, मथुरा।

सम्पादकीय—

क्या कभी आपने विचार किया है कि समस्त नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संक्रान्ति का अग्रदूत आर्यसमाज आज स्वयं कहां खड़ा है ? क्या सार्वदेशिक सभा, क्या प्रान्तीय सभायें और क्या हमारी समाजें और संस्थायें आज जो दलबन्दी का अखाड़ा बन चुकी हैं, उसका मूल कारण क्या है ? सामान्यतया समूचे राष्ट्र की नैतिकता आज जो रसातल को जारही है उसके कारणों पर क्या आपने कभी गहराई से सोचा है ? हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के आदर्शों में जो सामञ्जस्य और सन्तुलन का अभाव है, जो गहरी दरार है— उस पर क्या कभी आपने बारीकी से दृष्टिपात किया है ?

इन विभिन्न समस्याओं का एक मात्र कारण है—सच्ची आस्तिकता का अभाव। आज ऋषि दयानन्दने सम्प्रदायों की एक लम्बी कतार को चीर कर सच्ची और व्यावहारिक आस्तिकता का मार्ग प्रशस्त करते हुए एक मात्र 'ओंकार उपासना' का वेदोक्त विधान आर्यजनों के लिये बताया था। पर मुझे यह कटु सत्य कहने दीजिये कि भौतिकता की चकाचौंध में आर्यसमाज कोरा नास्तिक बन बैठा और जैसा कि हम सभी जानते हैं—'सब दुःखों का मूल है ईश्वर जुदाई आपकी।' हम भी दुरवस्था के शिकार बने बिना न रह सके। जप, तप, स्वाध्याय, संयम और साधना के स्वर्ण-पथ को हमने भुलादिया। समस्त दैवी गुणों का उदय और आसुरी दुर्गुणों का शमन सविध सश्रद्ध 'ओंकार उपासना' द्वारा सम्भव है। आइये, हम दैनिक स्वाध्याय और 'ओंकार उपासना' का व्रत लें। इसी आशा और विश्वास के साथ भक्त हृदय स्वामी सत्यानन्दजी महाराज की पुण्यकृति 'ओंकार उपासना' हम प्रस्तुत कर रहे हैं। एतदर्थ हम श्रद्धेय स्वामीजी के चिर कृतज्ञ रहेंगे। —ईश्वरीप्रकाश 'प्रेम'

श्री यमुना प्रसाद चौधरी
॥ ॐ ॥
सरस्वती विहार
क्रमांक .....
मोहल्ला दोदी सरैया गंज, मुजफ्फरपुर

ओंकार उपासना

[स्वामी सत्यानन्द जी]

मनुष्य स्वभाव से ही किसी न किसी का उपासक है। इसमें उपासना वृत्ति नैसर्गिक है, कृत्रिम नहीं। विद्वानों ने जंगली जातियों में भी उनके बुद्धि विकास के अनुसार उपासना वृत्ति का अस्तित्व देखा है। इतिहास के मन्दिर में प्रविष्ट होकर किसी जाति के यदि पुरातन से पुरातन वर्षपत्र को निकाला जाय, तो उसमें ऐसा एक भी दिन न मिलेगा, जब कि वह उपासना शून्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मण्डल को मृत्युलोक में अवतार धारण करते समयही उपासना वृत्ति के तार में पिरोदिया गया है, कि कहीं यह अमरलोक से विमुख न हो जाय, और इसका अनन्त के साथ सम्बन्ध बना रहे। सूर्यदेव जिस प्रकार अपने से बिछड़े हुए ग्रहों को अपने आकर्षण द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, इसी प्रकार परमात्मदेव अपनी अपार दया से परम पद से पतित मायाभिमुख प्राणी को अपनी ओर खींचते हैं, और यह आकर्षण परम सुख की प्राप्ति की आकांक्षा के रूप में सब मनुष्यों में प्रत्यक्ष है। तीन गुणों के

मिश्रित सृष्टि में, धूप छाया की भाँति परिवर्तनशील जगत् में परम सुख की प्राप्ति मानना 'मृगतृष्णा' है। क्योंकि दृश्य पदार्थ देश और काल से घिरे हुए हैं, इसलिए अल्प हैं, परम नहीं। जो वस्तु अल्प है उससे परम सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? परमसुख की प्राप्ति और परमानन्द की उपलब्धि तो देश काल से ऊपर परम प्रभु परमात्मदेव ही के लाभ से हो सकती है, अन्यथा नहीं। इस समझ को सन्त लोग आत्मिक-विवेक कहते हैं। आत्मिक विवेकयुक्त विवेकी भक्त उन परम सुख की प्राप्ति के लिए परमात्मदेव का जो ध्यान व राधन और चिन्तन करते हैं, वही परम पावनी उपासना है।

गुरु-भक्ति

आदि काल ही से सन्त, योगी, ऋषि कहते आए हैं, कि आत्मिक लोक की यात्रा में सफलता बिना गुरुमुख हुए, और बिना गुरु सेवन किए नहीं उपलब्ध होती। और जब तक गुरु-देव अपने द्वार के दीन भक्त पर दया न करें, उसको मार्ग पर न चलायें और यात्रा में आने वाले विघ्न बाधाओं से न बचायें तब तक आत्मिक कल्याण की आशा, दुराशा है। इसीलिए इस मार्ग के जिज्ञासु यात्री और प्रेमी सबसे पूर्व गुरुदेव की गवेषणा करते हैं। दूर-दूर देशों में, पर्वतों पर, नदी नालों के किनारे, और गिरि गुफाओं में गुरु-दर्शन की अभिलाषा लिए घूमते फिरते हैं, पर किसी भाग्य वालेही को कदाचित् कहीं आत्म-निष्ठ महात्माओं का मिलाप होता है, नहीं तो बहुतेरे बेचारे भोले भाले भक्त व्यर्थ ही भटकते रहते हैं अथवा ढोंग वा दम्भ में फंस कर तन-धन पूजकर निराश रह जाते हैं। सच है कि इस प्रलोभन पूर्ण पृथ्वी पर पर्य्यटन करने वाले प्राणियों में 'आश्च-

स्यौऽस्य वक्ता' इस परमादेव का बखान करने वाला अनुभवी पुरुष आश्चर्य (दुर्लभ) है। मानुषी देहधारी गुरु का मिलाप दुर्लभ मान कर कोई मनुष्य अपने कल्याण से वञ्चित न रह जाय, इसीलिए परम सन्त योगिराज श्रीपतंजलि ईश्वरभक्ति से समाधि सिद्धि बताते हुए उपदेश करते हैं—स: पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाच्छेदात्' परमात्मदेव काल के घेरेसे ऊपर होने से ब्रह्मा मनु आदि पूर्वज महात्माओंके भी गुरु हैं। इसका तात्पर्य यही है, कि परम पद का प्रेमी, परमात्मदेव ही को परम गुरु माने, आराधना काल में उसी की दया और सहायता की याचना किया करे।

न जाने किस समय गुरु के साहाय्य की आवश्यकता आ पड़े, इसलिए अभ्यासमें गुरुकी समीपता बड़ी आवश्यक होती है, सो सर्वव्यापक तथा पूर्ण स्वरूप से भक्त हृदयमें विराजमान भगवान् से अधिक अन्य कौन समीप होगा? अतएव जगद्गुरु जगदीश्वर अधिकतम पास होने से गुरुभावना के सर्वोत्तम पात्र हैं, वेदमार्ग में तो भक्तवत्सल भगवान् माता पिता बन्धु और सखा आदि सम्बन्धों से भी सम्बोधन किए गएहैं। भक्तको यह धारणा करनी चाहिए, कि परम पुरुष, परम गुरु परमात्मदेव मेरे पास है अपने परम प्रेम के तार से मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है, वह मेरे पास है, मेरी सहायता में तत्पर है। उस दयालुदेव की दया से मेरे मार्ग के सकल विघ्न दूर और चूर हो रहे हैं।

भक्ति-धर्म में गुरु चिन्तन, गुरु आराधन और गुरुध्यानादि बताया जाता है। यहाँ तक गुरु प्रेमकी प्रथा इस पथ में है, कि गुरु को ही सर्वस्व जानकर भक्तलोग गुरु की उपस्थिति में उसका और अनुपस्थितिमें उसकी आकृतिका ध्यान करने लग जाते हैं। योगके सम्पूर्ण रहस्योंके ज्ञाता, भक्ति धर्म के मर्मज्ञ महामुनि

पतञ्जलि को यह बात सर्वथा ज्ञात थी, कि जो गुरुदेव उन्होंने बताया है वह आकार रहित अकाय है, वह अनन्त है, सर्वत्र परिपूर्ण है, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन समेत अपनी सारी दौड़ लगा कर भी उस तक नहीं पहुँच सकतीं। तब उस गुरुदेव का आवाहन करने, उसका प्रेम अपने में सम्पादन करने और उस भगवान् का अपना भक्तिभाजन बनाने का कौन साधन है? इसका समाधान योगिराज पतञ्जलि ने बताया है कि 'तस्य वाचकः प्रणवः' उस गुरुदेव को मन मन्दिर में आवाहन करने के लिए उसका वाचक (प्रकट कर्त्ता अथवा नाम) ओम् है। सनातन भक्ति धर्ममें अपने गुरु में परम प्रेम और परा भक्ति उत्पन्न करने के लिए ओम् परम और चरम साधन है। इसी ओम् नाम से असंख्य भक्त जन सफल मनोरथ और सिद्ध काम हो गए। इस समय भी सैकड़ों भक्तजन इसी नाम में धुन लगा निमग्न रहते हैं। इस नाम का जितना अधिक प्रभाव है, इससे जितनी शीघ्र सिद्धि और समाधि होती है, उसका अंश भी अन्य साधनों में मिलना दुर्लभ है।

ओ३म् का महत्व

ओम् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है। इसमें ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है। इसमें ईश्वर के सब गुण आजाते हैं। ऐसा पूर्ण, ऐसा उत्तम ईश्वर सम्बन्धी दूसरा नाम नहीं मिलता। ओम् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नहीं पड़ती। सब भाषाओं के, ओम् से भिन्न ईश्वर सम्बन्धी नामों के साथ विशेषण लगाये बिना परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप का बोध नहीं होता।

ऐश्वर्यवान् होने से परमात्मा का नाम ईश्वर है। परन्तु इस नाम से ईश्वर का सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता और पूर्णानन्दता

सिद्ध नहीं होती। यह नाम राजों महाराजों के लिए भी साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। परमात्मा कहने से सबसे बड़ा आत्मा इसी अर्थ का बोध होता है, न कि सर्वज्ञान, सर्वशक्ति, आदि गुणों का। सर्वज्ञ कहने से ईश्वर सर्वज्ञानी है, सर्वशिक्तमान् कहने से ईश्वर सर्वशक्तियुक्त है, इन्हीं गुणों का बोध होता है, शेष गुणों का नहीं। जिस प्रकार पण्डित लोग ईश्वर अथवा परमात्मा आदि शब्दों के साथ अनन्त ज्ञान, जीवन शक्ति और आनन्द आदि विशेषण लगाते हैं, इसी प्रकार मौलवी और पादरी लोग भी खुदा, अल्लाह और गॉड ईश्वरवाची नामों के साथ अनेक विशेषण लगाकर ही अपने भाव को प्रकाशित करते हैं। जैसे परमेश्वर, खुदा अथवा गॉड सर्वशक्तिमान्, अविनाशी, सर्वज्ञ सर्वव्यापक और परमानन्द है, यह कहा जाता है, वैसे ओम् के साथ सर्व शक्तिमान् आदि विशेषण जोड़कर ओम् का वर्णन करना अनावश्यक है। ओम् कहना ही भक्त के लिए पर्य्याप्त है, क्योंकि बीजमें पेड़की भाँतिसब विशेषण इसीमें समाये हुएहैं।

ओ३म् में सर्वशक्तिमत्ता

'अ' 'उ' और 'म्' इन तीनों अक्षरों से ओम् की सिद्धि होती है 'अ' स्वर है। वैय्याकरण, "स्वयं राजते इति स्वरः" जो स्वयं प्रकाशित हो, जिसको दूसरे की सहायता की अपेक्षा न हो, उसे स्वर कहते हैं, कोई भी स्वरहीन व्यञ्जन बोला नहीं जाता, कोई भी शब्द अथवा वाक्य केवल व्यञ्जनों से बन नहीं सकता, एवं कोई भी सत्ता जिसका आश्रय 'अ' [ईश्वर] न हो, हो नहीं सकती, और कोई भी रचना अथवा काव्य प्रकट नहीं हो सकता जब तक कि उसके होने में 'अ' [ईश्वर] की प्रेरणा 'अ' [ईश्वर] की विद्यमानता न हो। अक्षर माला में व्यञ्जन तुच्छ शक्तियुक्त

हैं वे अपने आपको भी प्रकट नहीं कर सकते। परन्तु स्वर सर्वशक्तिमान् है। जहाँ स्वर किसी अन्य की सहायता के बिना स्वयं प्रकट होता है, वहाँ सारे के सारे व्यञ्जनों के प्रकट होने का मूल कारण भी है। यही दशा पदार्थ माला और कार्यमाला की है। 'अ' से भिन्न सर्व पदार्थ और कार्य व्यञ्जन अक्षरों की तरह हैं। इन सबका जीवन और प्रकाशक 'अ' [ईश्वर] सर्वशक्तिमान् है! उसे किसी अन्य पदार्थ की सहायता की अपेक्षा नहीं। वह स्वयं प्रकाशित है,और व्यञ्जनोंमें स्वरकी भाँति वस्तुमात्र में ओत प्रोत होकर उसे जीवनसत्ता और प्रकाश दे रहा है। वह सबका अन्तरात्मा है। यदि यह मूल सत्ता न हो तो अन्य सर्व सत्ताओं का अभाव हो जाय। "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" उसी के प्रकाशित होने से अन्य सब पदार्थ प्रकाश पाते हैं।

"सर्वशक्तिमान् का अर्थ"

'सर्वशक्तिमान्' शब्द का यह अर्थ करना कि ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है, अथवा सब कुछ कर सकता है, जहाँ भक्ति-भावकी त्रुटि का बोधक है, वहां यह अर्थ अनेक दोषों से भी पूर्ण है। प्रेम से पूर्ण परम पवित्र पिता कभी अपने प्यारे परम भक्त पुत्रको नरक भेज सकता है? कभी कोई भक्त विचार सकता है, कि ईश्वर परमात्मा भी पापाचरण करता है। भगवद्भक्तों के हृदय में तो परमात्मदेव दया,प्रेम, पवित्रता और न्यायादि गुण-युक्त ही विराजते हैं, जब कोई भी ईश्वरवादी बुद्धिमान् यह नहीं मानता कि परमात्मा अन्याय कर सकता है, पाप कर सकता है, अपने सारे ज्ञान को भुला सकता है, अपने जैसा ईश्वर उत्पन्न कर सकता है,अथवा अपनी प्रजा को अपने राज्यसे बाहर निकाल सकता है,तो 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ–जो चाहे सो करता है,अथवा

कर सकता है कितना भक्तिशून्य, युक्ति रहित और भूल से भरा हुआ है, यह जानना बहुत ही सुगम है।

भक्ति-धर्म में, ईश्वर पवित्र है, प्रेम है, दया है, अतुल है और सर्व दोष रहित है, इसीलिये 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ, सर्व शक्तियाँ परमात्मदेव में हैं, किया जाता है। सारी शक्तियाँ स्वरूप में पवित्र हैं। वस्तु देखने की एक शक्ति है, परन्तु किसी मनुष्य को शत्रु समझना, किसी वस्तु को चुराने के लिये अथवा अनुचित लोभ से देखना, यह दोष जानने और देखने की शक्ति का नहीं, किन्तु बुरी भावना का दोष है। इसी प्रकार सुनने करने और विचारने आदि की शक्तियों में दोष नहीं है, इनमें दोष राग और द्वेष से होते हैं। राग और द्वेष से प्रेरित होकर जो शक्तियों का उलटा अनुचित अशुद्ध और अनीति युक्त व्यापार है, वही बुरी भावना जन्य दोष है। बुरी भावना और राग द्वेष अज्ञान से होते हैं। परमात्मदेव पूर्ण ज्ञानी हैं, अतएव बुरे भावों से रहित हैं। राग द्वेष से विमुक्त हैं। इसलिए उनको शक्तियों में दोषों की सम्भावना भी नहीं है।

सत्य को असत्य करना, असत्य को सत्य करना, और अस्ति को नास्ति बनाना, नास्ति को अस्ति बनाना भी 'सर्व शक्तिमान्' का अर्थ नहीं है। क्योंकि उसका ज्ञान एक रस है, देशकाल से ऊपर है सत्य और यथार्थ है। इसलिए ईश्वर, जो वस्तु है उसका होना, जो नहीं है, उसको नास्ति को एक रस जानता है। उसका ज्ञान काल में नहीं घिरता। भूत भविष्यत् और वर्तमान् के भेद एकदेशी पदार्थों के लिए हैं, अनन्त के लिए नहीं। अतः परमात्मा के ज्ञान में जो अभाव है, शून्य है, नास्ति है, यदि वह भाव और अस्ति होजाय, उसका ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान होजाय। जैसे गणित शास्त्र में एक और एक मिलके

दो बनते हैं, यह जानते हुए भी किसी क्षण कोई यह समझने लग जाय, कि एक और एक मिलके तीन अथवा चार बनते हैं, तो उसका सारा का सारा गणित ज्ञान मिथ्या हो जायगा। ऐसे ही परमात्मा का नास्ति ज्ञान अस्ति हो जाय, अभाव ज्ञान भाव हो जाय, तो जहाँ किसी भी वस्तु की सत्यता न रहेगी, वहाँ परमात्मा का ज्ञान भी सिद्ध न हो सकेगा।

तात्पर्य यह है कि 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ जो लोग यह करते हैं, कि परमात्मा जो चाहे करता है, अथवा कर सकता है, और अभाव को भाव में और भाव को अभाव में लाता है, यह भ्रममूलक विचार है। भक्तों के भगवान् में सब शक्तियाँ हैं, पर शुद्ध हैं, दोष रहित हैं, और एक रस हैं।

ओम् सर्वज्ञ है

मनुष्य का सारा ज्ञान, सारे विचार शब्दों में पिरोए हुए हैं। हम किसी भी वस्तु का ध्यान करें, किसी भी वस्तु को सोचें, हमारा ध्यान और सोचना शब्दों ही में होगा। यह सत्य है, कि हमारा मन, हमारी बुद्धि शब्द क्षेत्र से बाहर कभी नहीं चले, और न ही चलना जानते हैं। जो शब्द मानुषी ज्ञान का आधार है उनकी रचना अक्षरों के संयोग से होती है। जो अक्षर मिलकर ज्ञान के आधार शब्दों को जन्म देते हैं उन सब में आदिम अक्षर और अपने से भिन्न सब अक्षरों का प्रकाशक अक्षर 'अ' है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो 'अ' आदिम अक्षर है। अन्य सब अक्षरों में 'अ' है। अक्षरों में शब्द हैं, और शब्दों में ज्ञान है। यदि 'अ' न हो तो अन्य कोई भी अक्षर न हो। कोई भी अक्षर न हो, तो शब्द मात्र का अभाव हो जाय। शब्दों के अभाव से ज्ञान का अभाव सहज सिद्ध है।

इसलिए सारे अक्षरों व शब्दों के प्रकाशक 'अ' ही में सर्व ज्ञान है। 'अ' जहाँ वर्णमाला में वर्ण है वहां 'ओम्' का भी भाग है। इससे महात्मा लोग सिद्ध करते हैं कि जैसे 'अ' वर्ण में अन्य सब वर्ण और शब्दजन्य सारा ज्ञान है, इसी प्रकार 'अ' [ईश्वर] में सम्पूर्ण ज्ञान है। 'अ' [परमात्मा] सर्वज्ञ सर्वदर्शी है।

'अ' अक्षरों में आदि अक्षर है। इसी से वर्णों, शब्दों और शब्द जन्य ज्ञानों की उत्पत्ति है। अध्यात्मवाद में 'अ' परमात्मा का नाम है, और यह सूचित करता है कि परमेश्वर ही से ज्ञान की उत्पत्ति हुई है। और वही ज्ञान का आदि स्रोत है।

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है। अन्य सब वर्णों की ध्वनि कण्ठ के ऊपर से निकलती है। हाँ 'क' और 'ह' की ध्वनि का स्थान भी कण्ठ है, परन्तु जब तक इनके साथ स्वर न हो तो वर्ण बोले नहीं जा सकते। इन सब से सन्त लोग यही सिद्ध करते हैं, कि सब ज्ञानों, सब ध्वनियों, और सब स्वरों का आदिम 'अ' [परमात्मा] है।

जगत् का आदि मध्य और अन्त ओम् है।

ध्वनि का आदि कण्ठ 'अ' से है, और मध्य होठों में एवं अन्त नाक में है, अर्थात् सानुनासिक अक्षरों में है। आदि का प्रतिनिधि 'अ' है, सर्वथा होठों में बोला जाने वाला मध्य का प्रतिनिधि 'उ' है। पाँच वर्गों में पवर्ग अन्तिम वर्ग है। पाँचों वर्गों के वर्णों में अन्त का वर्ण 'म' हैं। पाँच वर्गों के ङ्, ञ, ण, न् और म् ये पाँच सानुनासिक वर्ण हैं। पाँचों सानुनासिकों में अन्तिम सानुनासिक 'म्' है। होठों को बन्द करके नाक में ध्वनि

गुंजाई जाय तो पूर्णतया नाक की ध्वनि होगी। और वह ध्वनि अंतिम होगी। उससे आगे कोई भी ध्वनि गुंजाई नहीं जा सकती। ठीक ऐसी ध्वनि 'म्' की है। इसलिए पूर्णता से अन्त का प्रतिनिधि 'म्' है। 'अ' 'उ' और 'म्' से ओम् का प्रकाश होता है। मुनि लोग इस नाम रचना से यह सिद्ध करते हैं, कि जैसे ध्वनि की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' वर्ण से है, ऐसे ही सृष्टि की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' परमात्मा से है। यथा ध्वनि के मध्य का पूर्ण प्रतिनिधि 'उ' वर्ण है, तथा सृष्टि के मध्य में भी इसका आधार और पालन पोषण कर्त्ता 'उ' (परमात्मा) है; जैसे ध्वनि की पूर्णता से समाप्ति 'म्' वर्ण में है, एवमेव सृष्टि का अन्त सृष्टि का लय 'म्' (परमात्मा) ही में है। सारांश आदि में ओम् है, मध्य में ओम् है, और अन्त में ओम् ही है। ओम् से रचना, ओम् से पालना और ओम् ही से लय है।

'अ' ध्वनि मुख के भीतर और सूक्ष्म है। 'उ' की ध्वनि मुख से बाहर और स्थूल है और 'म्' की ध्वनि समाप्ति सूचक और स्थूल सूक्ष्मता मिश्रित है। सृष्टि की सूक्ष्म दशा में ओम् है, स्थूल अवस्था में ओम् है, और समाप्ति पर स्थूल सूक्ष्मता दशा में भी ओम् ही है।

ओम् सर्वान्तर्यामी, सबका आधार आश्रय और जीवन है

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है। इसके निकलने में जीभ, तालु, ओठों और नाक में गति उत्पन्न करनी नहीं पड़ती।

'अ'की ध्वनि किसी की अपेक्षा रहित स्वतन्त्र ध्वनि है। 'अ' का संकेत भी '।' इस प्रकार का स्वतन्त्र संकेत है। विस्तृत कण्ठ से जीभ आदि हिलाए बिना जो आकृति बनती है,पंडितों के मत में वही यह '।' आकृति अथवा संकेत है। अन्य सब स्वरों में 'अ' की ध्वनि मिली हुई है। कण्ठ के बिना केवल जीभ, केवल तालु केवल होठों और केवल नासिका से कोई भी वर्ण उच्चारण नहीं किया जा सकता। जो भी स्वर निकालो अथवा अलापो उसमें कण्ठ का स्वर अवश्य होगा। जो भी वर्ण उच्चारण करो उसमें 'अ' की ध्वनि अवश्यमेव होगी। जैसे कण्ठ की ध्वनि जीभ की ध्वनि में रमी हुई है, और सब ध्वनियों का आधार,आश्रय और जीवन है, इसके बिना कोई भी ध्वनि नहीं निकाली जा सकती, ऐसे ही 'अ' सब वर्णों में रमा हुआ है। सबका आधार आश्रय और जीवन है।

'अ' का उच्चारण बिना मिलाये अन्य किसी भी वर्ण का उच्चारण नहीं हो सकता। 'अ' ही के अधीन सब वर्णों की सत्ता है।

यथा 'अ' सब वर्णों में रमा हुआ है, वर्णों के उच्चारण का आधार आश्रय और जीवन 'अ' है। वह स्वयं स्वतन्त्र है। अन्य सब वर्ण परतन्त्र हैं, 'अ' के अधीन हैं। ऐसे ही 'अ' (ओम्) सर्वान्तर्यामी है, सबमें रमा हुआ है, और स्वतन्त्र है। अन्य सारे पदार्थ इसके समीप ऐसे ही हैं, जैसे 'अ'वर्ण के समीप शेष सम्पूर्ण वर्ण। अतएव 'ओम्'सब पदार्थों का आधार, आश्रय और जीवन है। सब सत्ताएँ परतन्त्र हैं और 'ओम्' के अधीन हैं। सबका अन्तरात्मा 'ओम्' है।

'अ'वर्ण की '।' ऐसी आकृति सब वर्णों में ज्ञानियों ने सिद्ध

की है। इसका भी आत्मवाद में वही तात्पर्य है, कि ओम् प्रत्येक वस्तु में व्यापक और विद्यमान है।

ओम् आनन्दमय और प्रेम स्वरूप है

'अ' का उच्चारण अपने स्वरूप में पूर्ण है। इसको किसी दूसरे वर्ण की सहायता की अपेक्षा नहीं, अन्य सारे वर्ण 'अ' के बिना बोले नहीं जाते, अतएव वे अपूर्ण और अधूरे हैं। 'अ' वर्ण का उच्चारण सब वर्णों के उच्चारण में रमा हुआ है, यहाँ तक कि शब्दमात्र में 'अ' वर्ण की विद्यमानता है, अतः 'अ' वर्ण सब वर्णों और सब शब्दों में व्यापक है। व्यापक वस्तु ही महान् होती है। अतएव 'अ' वर्ण पूर्ण व्यापक, और महान् है। अध्यात्म वाद में 'अ' से ओम् बनता है। जैसे वर्णमाला में 'अ' वर्ण पूर्ण वर्ण है, अन्य सारे वर्णों में व्यापक है, और अन्य सब वर्णों से महान् है, ऐसे ही ओम् स्वरूप में पूर्ण है। किसी भी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखता। अन्य सारे पदार्थ ओम् के आश्रित हैं। वर्णों में 'अ' वर्णवत् ओम् सब पदार्थों में व्यापक है। सबसे महान् है। जो वस्तु पूर्ण और महान हो, वही आनन्दमय हो सकती है, अतएव ओम् आनन्द स्वरूप है। पूर्णानन्दमय ही परम प्रिय स्वरूप हो सकता है, इसलिये भक्त लोग भगवान् को परम प्रिय स्वरूप भी कहते हैं।

ऊपर कहे 'ओम्' के सारे व्याख्यान का सारांश स्वल्प और शास्त्रीय शब्दों में कहा जाय तो ओम् का अर्थ, सच्चिदानन्द, अथवा अस्ति, भाति, प्रिय स्वरूप परमेश्वर है। ओम् भगवान् अनन्त जीवन, अनन्त ज्ञान, और परम प्रेम स्वरूप है।

'ओम्' निराकार है

ओम् अक्षर की आकृति कल्पित है। वह परिवर्तित हो सकती है, और होती आई है। इस समय भी ओम् अनेक आकृतियों में लिखा जाता है। भिन्न २ भाषाओं में भी उसके भिन्न २ आकार हैं। परन्तु 'ओम्' का उच्चारण 'ओम्' की ध्वनि, सब समयों में एक रही है, उसमें परिवर्तन हुआ भी नहीं, और हो भी नही सकता। सब भाषाओं में वह एकसी है। इसलिए ध्वनि का उच्चारण ही 'ओम्' है, आकृति नहीं, आकृति केवल संकेत मात्र है।

बालक को 'ओम्' का उच्चारण बताये बिना आकृति मात्र से 'ओम्' का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। परन्तु आकृति के ज्ञान से सर्वथा शून्य जन्मान्ध को ओम् का उच्चारण सुनकर 'ओम्' की ध्वनि का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान हो जाता है। वास्तव में शब्द का प्रकाश उच्चारण में होता है, और उच्चारण अर्थात् ध्वनि निराकार है, अक्षर और शब्द दोनों हैं। इसलिए सभी दार्शनिक पण्डित शब्द को निराकार मानते चले आये हैं॥

'ओम्' नित्य है

आकृति का ज्ञान आंखों से और शब्द का श्रोत्र से होता है, आँखों से नहीं। आकृतियों में परिवर्तन होता रहता है, वे बनती भी हैं और बिगड़ती भी! यदि शब्द भी आकारवान् होता तो बनता बिगड़ता रहता, और अनित्य होता। कुशाग्रबुद्धि आर्य दार्शनिक शब्द को निराकार और नित्य मानते हैं। 'ओम्' शब्द है, इसीलिए निराकार नित्य और सनातन है। इसका वाच्य भी निराकार, नित्य और सनातन है॥

'ओम्' अजन्मा है

वैयाकरणों के मत में 'ओमिति अव्ययम्' ओम् अव्यय है। अव्यय उस शब्द को कहते हैं जो विभक्ति लिङ्ग, और बचनों के परिवर्तन में न आवे। स्वरूप न बदले, जैसा है वैसा ही बना रहे: ओम् शब्द का वाच्य सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर देव भी परिवर्तन में नहीं आता, अव्यय अजन्मा और एक रस है।

'ओम्' एक है

'ओम्' से भिन्न परमात्मदेव के सारे नामों के एक दो और बहुवचन होते हैं, यथा परमात्मा, दो परमात्मा और बहुत परमात्मा, इसी प्रकार ईश्वर आदि शब्दों के एक दो और बहु बचन बनते हैं। अन्य भाषाओं में भी ईश्वर सम्बन्धी नामों में ऐसा ही परिवर्तन होता है, परन्तु 'ओम्' अव्यय है, अव्यय एक रहता है, वह परिवर्तन में नहीं आता. इसलिए सब वैयाकरणों के मत में ओम् के दो और बहुवचन नहीं होते, उसका एक ही वचन रहता है, क्योंकि 'ओम्' एक ही है।

'ओम्' स्वीकार अर्थ में

किसी बात के स्वीकार करने के अर्थ में भी 'ओम्' आता है। पुरातनकाल में आर्य लोग परमात्मा के परम भक्त थे। प्रत्येक कार्य के आरम्भ में 'ओम् तत्सत्' का उच्चारण किया करते थे। वह समझते थे, कि हमारे कार्यों में 'ओम्' ही सहायक है। वह कार्य वैसा ही होगा, जिसका जैसा होना 'ओम्' के ज्ञान में है। जैसे कोई भी सेवक, कोई भक्त और कोई भी प्रेमी अपने स्वामी, अपने भगवान् अपने प्रियतम सखा की आज्ञा

भगवद्भक्त सम्पूर्ण कार्यों के आदि में 'ओम् तत्सत्' और किसी के कथन अथवा पदार्थ के स्वीकार में केवल 'ओम्' कहकर कार्यारम्भ और बातको स्वीकार करते हुए, परमेश्वर की आज्ञा, परमेश्वरकी इच्छा और परमेश्वर की अनुमतिकी प्रधानता प्रदर्शित करते थे। वे आर्यसन्तजन अपने प्रत्येक कार्य का ओम् को साक्षी और सहायक समझते हुए अपने कार्यों में हो उसका पूजन किया करते थे। सब कार्यों के आदि में ओम् नाम का मङ्गल मनाना प्राचीन आर्यों की परमेश्वर परायणता का एक उज्वल और ज्वलन्त प्रमाण है।

संकेत से 'ओम्' सर्वत्र पाया जाता है

सब देशों में संकेत की भाषा में एकता है। सुख दुःख के संकेत, हर्ष शोक के संकेत, प्रायः सर्वत्र एकसे हैं, क्रोध, लोभ, मान, ईर्षा, प्रसन्नता, विषाद, भय, अनुकूलता, प्रतिकूलता, धैर्य, शान्ति और वीरता आदिका प्रकाश, हाथ, मुख, आंख और चेहरे आदिकी आकृतिके संकेतसे जब किया जाता है तो प्रायः वे सब जातियों और देशों में समान ही होते हैं। मनुष्यों के हृदयगत भावों में कोई भेद नहीं है, इसलिए भावोंके प्रकाशक संकेतोंमें भी सर्वत्र स्वभाव सिद्ध समानता है। ऊपर कहा गया है कि पुरातन आर्यजन सर्व कार्यों में ईश्वर का नाम स्मरण किया करतेथे, हर्षमेंभी ओम् और विषादमेंभी ओम्ही का उच्चारण कयाकरतेथे। जब कभी कोई आश्चर्यजनक बात स्मरण हो जाती, आश्चर्यमय घटना घटित होजाती तो ओम् नाम स्मरण किया जाता, मानो वे महाभाग ऐसी सब बातों में जगन्नियन्ता ही का नियम काम करता हुआ जानते थे। उपरोक्त भावोंके प्रकाश काल में ओम्का जो तुरन्त उच्चारण होता था वही भाव प्रकाशक संकेत आज

आहा! अहह: !! ओहो !!! आदि रूपों में बदल गया है। और आर्यजातिकी अन्य अनेक धार्मिक सामाजिक रीतियों नीतियोंकी भांति हर्ष विषादादि के समय ओम् का संकेत भी अपभ्रंश रूप में सब देशों में एकसा पाया जाता है। आज भी भक्त और प्रेमी लोग हर्ष विषाद और आश्चर्य आदि के समय परमेश्वर का नाम लेते अवश्य हैं, पर अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार।

वेद के आदि और अन्त में ओम्

महामुनि पाणिनिके मतमें 'प्रणवश्च' ८-२-८९-यज्ञ कर्मणि टेरोमित्वादेशः स्यात्। 'ओमां रेतांसि जिन्वतोम्' यज्ञ में वेदमन्त्रों के अन्त की 'टि' 'स्वर' को ओम् आदेश हो जाय कहा है, यथा 'जिन्वति' के इकरार को ओम् बनाकर 'रजिन्वतोम्' किया गया है, इससे यह सिद्ध हुआ कि वेद के जितने मन्त्र हैं उतनी संख्या से ही उनमें ओम् हैं। 'ओम् अभ्यादाने' ८-२-८७ इस सूत्र से पाणिनि मन्त्र के आदि में लुप्त ओम् बताते हैं। इस प्रकार वेद मन्त्रों की संख्या से ओम् संख्या दुगुणी हो जाती है॥

'ब्रह्मणः प्रणव कुर्यादादावन्ते च सर्वदा' मनु० २-७४

वेद के मन्त्र के पाठ के आदि अन्त, दोनों में ओम् का उच्चारण करे। आर्यवर महर्षिगण वेद मन्त्रों के पाठ समय आदि अन्त में ओम् नामका उच्चारण करके अपने जीवन से, अपनी क्रियासे और अपने भावोंसे इस बातका सजीव उदाहरण उपस्थित करतेथे कि वे वेद का आदिसे अन्त तक, ब्रह्मप्रतिपादनही मुख्य तात्पर्य मानते हैं। दो बर्तनों में जो वस्तु घिर जाय वैद्य उसे 'सम्पुट' कहते हैं मन्त्रके आदि अन्त में 'ओम्' आजाने से मन्त्र सम्पुट हो जाता है। ऐसे सब मन्त्रों का ओम्से सम्पुट है। यद्यपि वेदों में प्राकृत

विद्याओं का वर्णन है, पर वे विद्यायें ब्रह्म वर्णन में सम्पुट हो रही हैं। वेद का मुख्य वर्णन ईश्वर है। मुख्य तात्पर्य मनुष्यों को भक्त बनाकर परमेश्वर तक पहुँचाना है

ब्रह्मसूत्रों के निर्माता ब्रह्मनिष्ठ व्यासदेव 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र १—अ० १ पा० १—इस सूत्र से बताते हैं कि यह ब्रह्म ही वेद का विषय है, ब्रह्म ही का वेद प्रतिपादन करते हैं। 'समन्वयात्' जैसा परब्रह्म का सम्बन्ध विश्व से है वैसा ही साक्षात् अथवा परम्परा से सकल वेद मन्त्र से भी। कलिकाल में वेदों के सर्वोपरि ज्ञाता परम वेद भक्त, परम कारुणिक, ऋषिदयानन्द भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद का प्रतिपाद्य बताते हुए लिखते हैं कि परमेश्वर ही वेदों का मुख्य अर्थ है। और उससे प्रथक् जो जगत् है सो वेदों का गौण अर्थ है। इन दोनों में से प्रधान का ही ग्रहण होता है। इससे क्या आया कि वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादन करने में है।'

ओम् और आमीन

यह लिखा जा चुका है कि पूर्वकाल के आर्य लोग प्रत्येक कार्य, हर्ष, विषाद और आश्चर्य आदि में, यज्ञ के आदि अन्त में ओम् का उच्चारण किया करते थे। अपने यज्ञों, मन्त्र पाठों, और कार्यों के आदि अन्त में ओम् का उच्चारण करना उनको ओम् में सम्पुट करना है। दूसरे शब्दों में अपने यावत् कर्मों को ब्रह्मार्पण करना है। आर्यों के इस ब्रह्मार्पण के समान दूसरा दृष्टान्त जगत् में अन्यत्र नहीं है। यह समर्पण आर्यों की निष्कामता, और ईश्वर परायणता का प्रबल प्रमाण है। स्वर्गवासी स्वामी राम-

तीर्थजी की अनुमति है, कि ईसाई आदि धर्मों में प्रार्थना के अन्त में जो आमीन अथवा एमन पढ़ा जाता है, वह ओम् ही का रूपान्तर है, क्योंकि आर्य लोग प्रार्थना आदि के अन्त में ओम् का पाठ करते थे, और वही पाठ अन्य शब्दों की भाँति एमन, आमीन में बदल गया है।

अन्य धर्मों में ओम् की विद्यमानता

स्वामी राम के कथनानुसार ईसाई धर्म और इसलाम में 'ओम्' आमीन के रूप में विद्यमान है। कोई कोई तो यह भी अनुमान करते हैं कि बाइबल में जो खुदा कहता है कि मेरा नाम 'I am' है यह ओम् ही की ओर संकेत है। तिब्बत तथा अन्य देशों के बौद्ध लोग 'ओम् मणिपद्मे ओम्' इस मन्त्र का जप करते हैं। जैन मत में भी ओम् का आदर है। वे लोग इसे बीज अक्षर मानते हैं। कबीर साहिब, चरणदासजी आदि सारे सन्त इसको गाते रहे हैं। खालसा पन्थ की ग्रन्थ वाणी में भी 'ओंकार तत्तनाम' 'ओंकार वेदनिर्भय' इत्यादि अनेक स्थलों में 'ओम् का वर्णन है। पुराणों और तन्त्र ग्रन्थों में तो 'ओम्' का सहस्रों बार वर्णन आया है।

ऊपर के वर्णन से यही सिद्ध होता है कि धार्मिक संसार में सबसे अधिक जन ओम् नाम ही का जाप करते हैं। ईसाइयों और मुसलमानों को न भी गिनें तो बौद्धों में 'ओम् मणिपद्म' होने पर ओम् जपने वालों की संख्या सबसे अधिक ही है।

ओम् स्मर

जिस वेद से सारे ज्ञानों का जन्म हुआ है और जो सारे धर्मों का आदि स्रोत है, उस वेद में किसी ईश्वर नाम के स्मरण

का आदेश है तो वह ओम् ही है। 'ओम् क्रतोस्मर' हे ! कर्मशील मनुष्य ओम् का स्मरण कर। 'ओम् खं ब्रह्म' यजु० ४०—१७ ओम् आकाशवत् निराकार सर्वत्र परिपूर्ण और ब्रह्म है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।

(ऋ० मं० १ सूक्त—१६४—मन्त्र—३९) जिस ऋग्वेद के सार परम अक्षर में सारे लोक और इन्द्रियाँ स्थित हैं, जो उसको नहीं जानता वह (ऋग्वेद के पाठ) से क्या करेगा। (और) जो उस अक्षर को जानते हैं वे ही संसार में भली भाँति रहते हैं। इससे अधिक ओम् नाम की महत्ता, इससे अधिक ओम् का गौरव, और इससे अधिक ओम् का महत्वगायन शब्दों में और कोई क्या करेगा। वास्तव में पवित्र वेद ने जो पदवी ओम् को दी है वह परम है।

वैदिक ग्रन्थोंमें बार बार ओम् का गायन किया गया है। और जिन महाभाग भक्तों को उपनिषद् रूपी ब्रह्म मन्दिर में प्रवेश करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है, वे मुक्तकण्ठ से कहेंगे कि उपनिषद् ओम् ही का यश गाती हैं, ओम् अक्षर ही की उपासना बताती हैं। उपनिषदों के पाठ से तो प्रतीत होता है कि वह ब्रह्मविद्या को निर्मल गङ्गा ऋषियोंके मस्तकरूप शिखरों से उतर कर संसार को पावन करती हुई अन्त में ओम् सागर ही में समा रही है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।

कठ० २—१५। आत्मज्ञानी गुरु शिष्य को उपदेश करते हुए कहते हैं कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, सारे तप जिसको गा रहे हैं, और जिस पद प्राप्ति की इच्छा करते हुए (तपी अथवा ब्रह्मचारी गण ब्रह्मचर्य धारण करते हैं,उस पदको संक्षेप से मैं तुम्हें कहता हूँ (वह पद) 'ओम्' यह पद है। **'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्तिवः पाराय तमसः परस्तात्'** (माण्डूकोपनिषद्)। महात्मा उपदेश देते हैं, कि हे उपासको ! अन्धकार से पार होने के लिए परमात्मा को 'ओम्' ऐसा लक्ष्य अथवा ध्येय बनाकर चिन्तन करो, तुम्हारा कल्याण हो। सारे माण्डूक्योपनिषद् में ओम् ही का यश गायन किया है। इस उपनिषद्कार महात्माने त्रिलोकीका समावेश ओम् में सिद्ध किया है। **'ओमिति ब्रह्म, ओमिदं सर्वम्'** तैत्तिरीय उपनिषद में कहा है, ओम् ब्रह्म है, ओम् ही यह सारा विश्व है। उपनिषदों के सम्बन्ध में शेष इतना कथन पर्याप्त है कि छान्दोग्य और बृहदारण्यक के उपासना भागों में 'ओङ्कार' उपासना का बड़े विस्तार से वर्णन है। उपनिषदों में वर्णन हुए सब सन्तों की सम्मति में ओम् ही ब्रह्म, ओम् ही विश्व, ओम् ही प्राण आत्मा और ओम् ही परम ध्येय है। इस लोक और परलोक में सफल बनाने वाला भी ओ है, वही परम अवलम्बन, सहारा और भरोसा है॥

सब सन्तों में ओम् की उपासना

ब्राह्मण ग्रन्थों से आरम्भ करके पुराणों पर्यन्त साहित्य में जितने महात्माओं का वर्णन आया है,वे सब ओम् के ही उपासक थे। मनु महाराज तो ओम्' को तीन वेदों का सार बताते हैं, और इसको 'एकाक्षरं परं ब्रह्म' परब्रह्म कहते हैं, इन्हीं महाराज ने बताया है कि 'जप्येनैव तु संसिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र संशयः'

इसमें कोई संशय नहीं कि ब्राह्मण जप ही से सिद्ध हो जाता है। ब्रह्मा से जैमनि पर्यन्त महर्षि मण्डल ओम् ही का उपासक था। रामायण में वर्णन आता है कि सिद्धाश्रमको जाते हुए गंगा के किनारे प्रातःकाल, परम कर्मयोगी, मङ्गल नाम श्रीराम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण समेत स्नानादि करके 'जेपतु परमं जपम्'' गायत्री सहित 'ओम्' परम को जपा ॥

एक दिन श्री युधिष्ठिर महाराज प्रात काल स्नान संन्ध्या आदि से निवृत्त होकर दिव्य वस्त्र धारण और परिष्कार आदि करके अखण्ड ब्रह्मचारी शरशैयाशायी श्रीभीष्म के दर्शनार्थ जाने की आकांक्षा से प्रथम भगवान् श्रीकृष्णके पास गए। युधिष्ठिरजी ने देखा कि श्रीकृष्ण अकम्प और अचल भाव से 'ध्यानमेवापश्यत' ध्यानारूढ हैं। उस दिन युधिष्ठिरजी श्रीकृष्ण महाराज को सङ्ग लेकर भीष्मजीके पास गए और प्रश्न पूछने की आज्ञा लेकर सायं समय हस्तिनापुर लौट आए। श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर से पृथक होकर अपने शयनागार में प्रविष्ट हुए। निर्दोष नींद लेते हुए जब चार घड़ी रात्रि शेष रही महाराज उठकर बैठ गए, और अपनी सारी इन्द्रियों और चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके श्रीकृष्ण देव ने उस समय 'दध्यौ ब्रह्म सनातनम' सनातन ब्रह्म 'ओम्' का चिर तक ध्यान किया।

श्री कृष्णजी ने ओम् को एकाक्षरं परं ब्रह्म' एकाक्षर ब्रह्म कहा है, और गीता में यह भी बताया है कि 'वेद्यं पवित्रओंकारः' पवित्र ओंकार जानने योग्य है। गीता के पाठ से यह बात निश्चित प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण महाराज के समय ब्रह्मज्ञानी और सारे वैदिक धर्मी लोग प्रत्येक शुभ कर्म के प्रारम्भ में 'ओम् तत्सत्, का पाठ पढ़ा करते थे, क्योंकि श्रीकृष्ण कहते हैं—

'ओम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः'

गीता १७—२३

'ओम् तत्सत्' इन तीन पदों को ब्रह्मनिर्देश कहा गया है 'इसलिए ब्रह्मवादियों के यज्ञ दान तप आदि शास्त्रोक्त कर्म सदा ओम् उच्चारण करके ही किए जाते हैं'। ध्यान में निपुण बौद्ध भिक्षु भी एक अक्षर ओम् ही में अपने आपको निर्वाण करते हैं श्री शङ्कराचार्य आदि आचार्य इसको प्रतीक मानकर उपासना करना बताते हैं। देशी भाषाओं में अपने भावों को प्रकाशित करने वाले भक्ति धर्म के अनुयायी दादू,कबीर, चेतन, चरणदास श्री नानकजी आदि सन्त जन सीधे अथवा प्रकारान्तर से ओम् ही के भक्त थे। सन्तशिरोमणि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती जी नियम से नित्य बड़ी देर तक ओम् के ध्यान में लीन हुआ करते थे। महाराज ने सन्यासियों को ओम् का जप करने की प्रबल प्रेरणा की।

इस समय भी सैकड़ों साधु सन्यासी, सूफी, फकीर, और सज्जन गृहस्थ अपने मन में ओम् नाम की माला जपते हैं, और परमानन्दकी प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन इसी शब्दको समझते हैं।

ओम् सोहम्

बहुत महात्माजन 'ओम् सोहम्' का श्वास प्रश्वास के साथ जप करते हैं। कइयोंको केवल 'सोहम्' का जप करते भी देखा है। गोरक्षा पद्धति, हठयोगप्रदीप आदि योग ग्रन्थों और चरणदास आदि महात्माओं की वाणियों में 'सोहं' जाप का विधान भी किया गया है। इस 'सोहम्' सन्तजापका अर्थ वह(ब्रह्म) मैं हूँ लोग करने लग गये हैं। पर महात्माओं के मत में इस अर्थ

का आदर नहीं है। ध्यान विद्याके भेदोंको जानने वाले मुनिजन 'सोहम्' को ओम् ही बताते हैं। जैसे व्याकरणशास्त्र में प्रत्ययों के विधान करते हुए सुगमतार्थ कई अक्षर जोड़े जाते हैं, ऐसे ही श्वास प्रश्वास के साथ जप करते समय सुगमता हो यह सोच कर नवीन सन्तों ने 'ओम्' के साथ 'स' और 'ह' यह दो अक्षर जोड़ दिए हैं। भीतरी साँस खींचें तो 'सो' की लम्बी ध्वनि प्रतीत होगी और यदि नाकसे धीरे धीरे बाहर श्वास छोड़ते जायें 'हम्' की गूँज ज्ञात होगी। इसी क्रम को और स्वाभाविक क्रम को सोच कर सज्जनों ने 'ओम्' में 'स' और 'ह' मिलाए हैं। यदि व्याकरण के प्रत्यय अक्षरों की भाँति 'स' 'ह' का लोप कर दिया जाए तो 'ओम्' ही शेष रह जायगा।

ओम् का उच्चारण सुगम और कोमल है

सब धर्मों की पुस्तकों में, सब देशों की भाषाओंमें और सब सन्तों के रसीले सङ्गीतों में परमात्मा के जितने नाम आये हैं उन सब में अतीव कोमल, महा मधुर, अतिशत सुगम 'ओम्' नाम है। ग्रामों के वासी 'श' आदि का ठीक उच्चारण नहीं कर सकते इसलिए ईश्वर, ईश, खुदा पुकारते हैं। God तो उनसे कहा ही नहीं जाता, अच्छे से अच्छा पश्चिमी पण्डित भी एक ही दिन में परमात्मा नहीं कह सकता, किन्तु परमाटमा ही कहेगा, पर 'ओम्' नाम ऐसा सुगम, ऐसा कोमल है कि किसी देश का वासी वह ग्रामीण हो चाहे नागर सुबोध हो चाहे सर्वथा अबोध, अपढ़ हो चाहे पण्डित हो, दो चार पल ही में इसका शुद्ध उच्चारण सीख सकता है। यह नाम कठोरता रहित है। सब देशों और मनुष्यों के लिए समान है।

अनुभूति स्वरूपाचार्य—नामक व्याकरण के पण्डित हो गये हैं—

कहते हैं कि एक दिन वे किसी नगर में धुरन्धर पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ कर रहे थे इनका ऊपर की दन्तपंक्ति का एक दाँत टूटा हुआ था। प्रसङ्गवश सप्तमी विभक्ति का बहुवचन 'पुंसु कहने लगे परन्तु टूटे दाँत के स्थान में अकस्मात् फूँक निकल गई और 'पुंसु' के स्थान 'पुंक्षु' अशुद्ध उच्चारण हो गया 'पुंक्षु' शब्द सुनते ही प्रतिपक्षियों ने अपनी जय की घोषणा कर दी। अनुभूति स्वरूपजी ने अपने 'पुंक्षु' को शास्त्र सम्मत सिद्ध कर दिखाने के लिए एक दिन का अवकाश माँगा, और वह अवकाश उन्हें दे दिया गया। रात्रि भर में सारस्वत व्याकरणकी रचना की गई, और अगले दिन आकर आचार्यजी ने अपने निशि निर्मित व्याकरण से 'पुंक्षु' शब्द की सिद्धि प्रतिपक्षियों के सम्मुख उपस्थित की।

ऊपरकी कथाके कथनका यही प्रयोजन है, कि यदि किसी के मुँह मे दाँत न हों तो वह जिन शब्दों में दाँतों से बोले जाने वाले अक्षर आते हैं, उन शब्दों को नहीं बोल सकता। इसलिये बच्चों और बूढ़ों के लिए परमात्मा, खुदा और गॉड आदि नामों का उच्चारण कठिन हो जाता है। किसी मनुष्य की जीभ कट गई हो तो वह तकारादि अक्षरोंयुक्त शब्दों को नहीं बोल सकता, तुतले और हकले मनुष्य की जो दशा बोलते समय होती है और अक्षरों का सत्यानाश वे करते हैं उसे सब ही जानते हैं, पर गूंगा बेचारा तो सारा बल लगा कर भी कोई भी शब्द नहीं बोल सकता। हाँ, एक अक्षर है जिसे बच्चा बूढ़ा, जीभकटा, तुतला, हकला और गूंगा भी बड़ी सुगमता से बोल सकता है,

और वह अक्षर 'ओम्' है। दाँत मुँह में न हों, जीभ कट गई हो तो तुतले, हकले और गूँगेपन में भी परमात्मा की भक्ति से कोई वंचित नहीं किया गया। ओम् उच्चारण में तो दाँत और जीभ आदि के हिलने का काम ही नहीं।गला ठीक होना चाहिये, इसमें केवल कण्ठ का काम है। कण्ठ को खोलकर लम्बे 'ओ' की ध्वनि गुँजाओ और अन्त में होठ बन्द करदो अथवा 'ओ' ध्वनि को अपने आप शान्त होने दो, साँस समाप्त होने के समय 'ओ' की ध्वनि, नाकमें धीमी धीमी गूँजने लग जावेगी, उस समय 'ओम्' का उच्चारण पूर्ण हो जावेगा। किसी मनुष्य का कण्ठ तभी बन्द होता है जब उसके जीवन के पल समाप्त हो जाते हैं। मनुष्य के अन्तकाल तक उसका गला बना रहता है, इससे मनुष्य जीवन के अन्तिम श्वास, अन्तिम पल पर्यन्त परमात्म देव के पवित्र नाम की डोर पकड़ सकता है, भक्त बन सकता है, और स्वर्गारोहण कर सकता है।

जातकर्म संस्कार और ओम्

आर्य लोग संस्कारों के महत्व को आदिकाल से मानते चले आए हैं, जैसे औषधियों को बराबर भावना व पुट देने से वे प्रबल हो जाती हैं, धातुओं में शोधन आदि क्रियाओं से पुष्टि और प्रबलता आ जाती है वैसे ही संस्कारोंसे मनुष्य जातिकी प्रबलता हो जाती है।

संस्कार पद्धति के अनुसार, जब बालक का जन्म हो तभी उसका पिता सुवर्ण शलाकाको घृत और मधु लगाकर नवजात बालककी जीभ पर बड़े कोमल हाथ से 'ओम्' लिखे और उस दूज के चाँद के दर्शनोंसे प्राप्त हुई प्रसन्नताका प्रकाश 'अंगा द'ग-

त्समभवसि' इत्यादि पाठ पढ़ करके करे। उसी समय उसके कानमें 'वेदोऽसि' तू वेद है, ये शब्द कहे।

जन्म से ही बालक की जीभ पर ओम् लिखकर वैदिक पिता स्वसन्तान को इस भाव से भावित करता है। उस पर यह भाव प्रकाशित करता है, कि मेरे चित्त के चाँद तेरी जीभ पर पहिले पहिल विराजने वाला शब्द ओम् है तेरी जीभ पर सदा रहने योग्य कोई नाम है तो यह 'ओम्' है।

घृत और मधु, यह दोनों पदार्थ रोगों को दूर करने वाले हैं, पुष्टि के देने वाले हैं, इनसे परमेश्वर का नाम ओम् लिखने का यह तात्पर्य है, कि घृत से अधिक पुष्टि देने वाला रोग नाशक मधु से भी अधिक मधुर सौर दोष विनाशक ईश्वर का ओम् नाम है। रसना को इसका रस सदा लेते रहना चाहिए।

यद्यपि हीरा, मोती आदि रत्न बहुमूल्य हैं। उनका बड़ा आदर है। यह भी ठीक है कि कभी कभी एक दो तोले भरके हीरे की बराबरी सेरों सोना नहीं कर सकता, पर आगमें पड़नेसे जहाँ सारे रत्न कोयला अथवा राख हो जाते हैं वहाँ आग में पड़कर सुवर्ण अधिक उज्ज्वल हो जाता है,और अतिशय चमकने लगता है। इसलिए वास्तविक धन सम्पत्ति सोना है, जिसका नाश अग्नि भी नहीं कर सकती। पुत्र की जीभ पर सोने की शलाका से 'ओम्' लिखते समय मानो यह प्रकट किया जाता है कि हे बालक सोने से अधिक मूल्यवान् सदा उज्ज्वल रहने वाला धन आत्मिक धन है और वह ओम् है। वैदिक माता पिता अपने प्यारे पुत्र-पुत्रियों को पहिले पहल कोई सम्पत्ति. कोई धन, और कोई वस्तु देते हैं कि जो बच्चेको दूध देनेसे भी प्रथम

देनी लिखी है, तो वह आत्मिक सम्पत्ति है। परमात्मा का "ओम्" नाम है।

सुवर्ण का रंग सब रंगों में उत्तम रंग है, प्रभात में उषामें सुवर्ण रंग ही की झलक होती है, जिससे सारे संसार के कवि इस पर मोहित हैं। मन को मुग्ध बना देने वाला सन्ध्या का सौन्दर्य्य, सुवर्ण परिष्कार के कारण ही कविता में इतना ऊँचा पद पा गया है। सब ऋतुओं का राजा बसन्त समझा जाता है उसका वेष भी सुवर्ण रंग से रंगा है। आर्य्यों में विवाह के समय केशरी वस्त्र धारण किये जाते हैं। अथवा उत्तम रंग जानकर उस के छींटे दिए जाते हैं। आर्य राजपूत संग्राम जाते समय केशरिया भेष धारण किया करते थे। केशर का रंग भी सुवर्ण के रंग के समान है। इसलिए उक्त समयों के वेषों से प्रकट किया जाता है कि सर्वोत्तम प्रसन्नता के भाव सुवर्णमय हैं। कर्तव्य परायण वीर क्षत्रिय के भाव सुवर्ण रंग रंजित हैं।

आदर्श जीवन, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और ज्ञानसागर श्री कृष्ण भी केशरी दुपट्टा ही धारण करते थे। इससे यह कल्पना हो सकती है कि सर्वोत्तम कर्मयोग के विचारों से युक्त आत्माओं और विशुद्ध आत्मज्ञानियों को भी सुवर्ण रंग ही प्रिय लगता है। लगना चाहिए भी, क्योंकि सुवर्णमय आचार कर्तव्य कर्मयोग है। सुवर्णमय विचार, संकल्प और भाव आत्म-ज्ञान के लक्षण हैं। आर्य्य देश के लोग देवताओं पर भी केशर चढ़ाते हुए मानों यह प्रदर्शित कर रहे हैं, कि किसी का पूजन किसी की विनय करना सुवर्ण रूप विचारवान् व्यक्ति का ही काम है।

आत्मवादियों के मत में प्रातःकाल जागते समय ही, नेत्र

बन्द करके प्रभु का नाम जपते हुए सुवर्ण रंग देखने का यत्न करना चाहिए । प्रसन्नता, सफलता और नीरोगता का रंग सुवर्ण है । यदि सुवर्ण रंग स्थिरता से दीखने लगजाय, तो तन मन में प्रसन्नता की वृद्धि और स्थिति लाभ होती है । प्रभात में जागना और धर्म अर्थ आदि का चिन्तन करना मनु भगवान् ने बताया है, ऐसे सुवर्ण समय में सुवर्ण विचारों का उत्पन्न होना बहुत सम्भव है ।

प्रातः और सायंकाल का सूर्य सुवर्ण पिंड के समान दीख पड़ता है । पर्वत शिखर पर से अथवा सागर गत जहाज में से जिस किसी को कभी सूर्योदय अथवा सूर्यास्त का दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वह मुक्त कण्ठ से कहेगा, कि उस समय सूर्यदेव सुवर्ण स्वरूप बने हुए होते हैं, और ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो पूर्व अथवा पश्चिम में कोई लम्बा चौड़ा सुवर्ण पर्वत पिघल गया है । आर्यों के धर्म ग्रन्थों में प्रातः पूर्वाभिमुख और साय पश्चिमाभिमुख होकर सन्ध्या जपने का विधान है ; सूर्याभिमुख होकर सन्ध्या जपने का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक अनेक लाभ हैं । सन्ध्या रूप सुवर्ण विचार सुवर्ण आचार में जब एक भक्त निमग्न हो, उसके लिए कितनी आनन्द की बात है, कि जिस समय में सन्ध्या जपता है वह सुवर्णमय, जिस ओर उसका मुख है, वह दिशा अपने स्वामी समेत सुवर्ण रूपा हो रही हैं, अन्दर बाहर सर्वत्र सुवर्ण ही सुवर्ण विराजित है ।

सुवर्ण रङ्ग का महत्व इससे अधिक कोई क्या कहेगा कि जिन सर्वत्यागी वीतराग सन्यासियों ने तामस, राजस, वृत्तियों को शमन करके विशुद्ध सत्वगुण की सुवर्णमयी ज्योति को लाभ किया, वस्त्र रङ्गने के लिए उन्हें भी सुवर्णा सा कुसम्भिया

अथवा गेरुआ रङ्ग ही अच्छा लगा।

ऊपर कहे गुणों, कीर्त्ति और महत्व की पूर्ति और अवतार सुवर्ण है। उस सुवर्ण की लेखनी से लिखने योग्य शब्द 'ओम्' के बिना और कौन हो सकता है। ठीक है, महेश्वर के नाम के आगे महेश्वरी-माया ही को माथा टेकना चाहिए! मनुष्य सोने के सुन्दर स्वरूप के सामने सारे संसार के स्वामी को विस्मरण न करे, न छोड़े किन्तु शोभा के धाम सोने को उस के नाम पर से वारे सोने को उसके नाम के आगे झुकाये, और सोना उसका नाम लिखने के लिए घिसाये।

पुत्र-पुत्री की जिह्वा पर सबसे प्रथम 'ओ३म्' लिखने का यह भी तात्पर्य समझना चाहिए कि बच्चे को सबसे पहिले 'ओ३म्' शब्द ही सिखाना उचित है, ऐसा करना एक तो सन्तान पर शुभ संस्कार डालना है, दूसरे 'ओम्' अतीव कोमल होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है, 'ओ-ओ' तो प्रत्येक बच्चा पुकारा करता ही है, केवल होंठ बन्द करना ही शेष रहता है, और वह भी बच्चे के लिए कोई कठिन काम नहीं। उन माता पिताओं को अपना सौभाग्य समझना चाहिए, जिनकी सन्तान बाल्यकाल से आस्तिक भाव के संस्कारों के रङ्ग में रङ्गी जावे, वह संतान भी पुण्यवान् है जिसको पैतृक सम्पत्ति की भाँति ईश्वर की भक्ति, ईश्वर का नाम माता पिता से प्राप्त हुआ है। माता की ओर से इससे बढ़कर सन्तान को देने की कोई वस्तु नहीं, और यह पितृ ऋण का भाग है जिसे सन्तान ने आजन्म स्मरण रखना है।

अन्तकाल में ओम् स्मरण।

"ओम् क्रतोस्मर" वेद आज्ञा करता है, कि हे मनुष्य!

तेरी आत्मा निकल जाने पर यह देह अन्त में भस्म है, अतएव 'ओम्' का स्मरण कर। गीता में श्री कृष्ण ने कहा कि जो मनुष्य मरण समय भी 'ओम्' का स्मरण करता है, वह परम गति को लाभ कर लेता है। महाभारत में कहा है कि जब द्रोणाचार्य पर धृष्टद्युम्न ने प्रबल प्रहार किया तो आचार्य सम्भल न सके, तन पिंजरे से उनके प्राण पखेरू उड़ने लगे, उसी समय समर भूमि में, ज्ञानी ब्राह्मण ने ओम् में ध्यान लगाना आरम्भ किया और अन्त में मरण-धर्मा देह को छोड़कर उनका आत्मा 'ओम्' की सीढ़ी से स्वार्गारोहण कर गया।

जिस मनुष्य का अन्त सुधर गया, उसका सब कुछ सुधर गया। महात्माओं के मन में जिसकी मति अन्त में भी 'ओम्' में लगजाय उसका नाश नहीं होता। परन्तु मोह माया में फँसे हुए मनुष्य के लिए अन्त का समय अपने आप सुधारना कोई सुगम बात नहीं है। अन्त सुधारना सन्तान का काम है। पितरों के लिए अन्त समय सन्तान सहारा है, स्वर्ग का द्वार है। जैसे डूबते हुए मनुष्य का आप ही आप किनारे आजाना बड़ा कठिन है, ऐसे ही मरण काल में मोह माया के सागर में डूबते जन का धर्म-धरती पर आ लगना महा कठिन है। मृत्यु और मोह सागर में डूबते को बचाने वाला कोई और ही चाहिए।

पितृऋण उतारना सुसन्तान का परम कर्म है। उसके उतारने के भी कई मार्ग हैं। सन्तान को सुयोग्य बनाना, गृह धर्म का पालन करना, कुल धर्मों का निभाना, आदि सब कार्य पितृ ऋण उतारने के छोटे छोटे भाग हैं। पर सबसे बड़ा, सबसे उत्तम साधन पितरों को भगवान् का नाम स्मरण कराना है, उन्हें आत्म चिन्तन कराना है। सन्तान का जन्म

होते ही पितरों ने जो 'ओम्' नाम का दान दिया था, सो उनके सदा के प्रस्थान समय यह 'ओम्' नाम बार २ उनकी जीभ पर रखना चाहिए, और उन्हें स्मरण कराना चाहिए।

संसार ओम् रूप है

अ—उ—और—म् इन अक्षरों से ओम् बना है। ज्ञानियों की कल्पना में ओम् के तीन अक्षर ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन अनादि पदार्थों के प्रतिनिधि भी हैं, 'अ' से ईश्वर 'उ' से जीवात्मा और 'म्' से माया 'प्रकृति' का ग्रहण किया जाता है। जैसे 'अ' 'उ' और 'म्' के मिलाप से ओम् बना है, ऐसे ही ईश्वर, जीव और प्रकृति से इस अनन्त विश्व की रचना हुई है। ओम् की रचना में जिस प्रकार 'अ' और 'म्' के मध्य 'उ' की स्थिति है, उसी प्रकार ईश्वर और माया के बीच विचरने वाला जीवात्मा है। अक्षरों मे 'अ' 'उ' ये दोनों अक्षर स्वर हैं, परन्तु 'म्' व्यञ्जन है। स्वर स्वतन्त्र अक्षर होते हैं, और व्यञ्जन अक्षर स्वरों के अधीन होकर बोले जाते हैं। जब तक व्यञ्जन अक्षर में कोई स्वर न हो, वह बोला नहीं जा सकता। विश्व में भी परमेश्वर और जीवात्मा ये दो स्वतन्त्र पदार्थ हैं। ये अपनी सत्ता और चेतनता से स्वयं प्रकाशित होते हैं, परन्तु कारण रूपा प्रकृति में यदि ईश्वरेच्छा और जीवात्मा का प्रवेश न हो, तो यह कार्य रूप में कभी भी प्रकट नहीं हो सकती।

'अ' और 'म्' इन दोनों का मध्यवर्त्ती 'उ' अक्षर यदि 'म्' में मिलजाय तो उसकी दशा 'मुख' मुँह आदि शब्दों के 'म्' में मिले 'उ' की सी हो जाती है। 'उ' नीचे पड़ा हुआ है और व्यञ्जन, शक्ति हीन 'म्' उसके सिर पर सवार है।

विश्व रचना में भी यही समझना चाहिए कि जब स्वर अक्षरवत् स्वतन्त्र जीवात्मा, अविद्या वश अपने आपको भूल जाता है, और परमात्मा को छोड़ कर प्रकृति—माया और इस लोक ही को सब कुछ समझने लग जाता है तो यह माया उकार अक्षर के सिर पर 'म्' व्यञ्जन अक्षर की भाँति जीवात्मा के सिर पर बैठ जाती है, इसको अपना दास बना लेती है, और जन्म जन्मान्तर के ऊँच नीच नाना नाच नचाती रहती है।

और यदि अक्र र और 'म्' का मध्य स्थित उकार अक्षर आदि अक्षर 'अ' में जा मिले तो दोनों मिलकर 'ओ' बन जाते हैं। एक रूप और एक स्वर हो जाता है। 'ओ' के पास यदि व्यञ्जन 'म्' आ भी जावे, तो भी, अ में मिले 'उ' को छू नहीं सकता, किन्तु 'ओम्' अथवा ओ के व्यञ्जन 'म्' वा बिन्दु की भाँति पृथक् ही पड़ा रहेगा। ऐसे ही जीवात्मा, परमात्मदेव की उपासना करके जब परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है, तब इसका स्वरूप परमात्मा के गुणों में पूर्ण हो जाता है। परमानन्द में निमग्न आत्मा को माया बाँध नहीं सकती। उसका स्पर्श नहीं कर सकती, किन्तु ऊपर कहे हुए 'म्' व्यञ्जन अनुस्वार की भाँति शक्तिहीन माया, शून्यवत् माया अकिंचित् करा हो जाती है।

अकार अक्षर यदि 'म्' व्यञ्जन में मिलजाए तो उसका रूप 'म' इस प्रकार का होता है। 'म्' में मिला हुआ उकार तो स्पष्ट दीख पड़ता है परन्तु अकार दिखाई नहीं देता। आँखों का विषय नहीं रहता, केवल मन बुद्धि ही से जाना जाता है, कि 'राम' शब्द के 'म्' में अकार है, ऐसे ही समझना चाहिए कि परमेश्वर देव 'म्' में के अकार की भाँति प्रत्येक परमाणु, एक २ पत्ते और अखिल पदार्थों में रमे हुए

हैं, परन्तु इन्द्रियों से ग्रहण नहीं हो सकते। भक्त लोग अपने ज्ञान, श्रद्धा और विश्वास ही से ईश्वर सत्ता को सर्वत्र विद्यमान जानते और मानते हैं।

नाम नामी का सम्बन्ध

'ओ३म्' अक्षर परमात्मा का नाम है, वाचक है, और सर्वत्र रमी हुई चेतन सत्ता, ज्ञान तथा आनन्द पूर्ण सत्ता इसका नामी और वाच्य है। ओम् शब्द है और सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा इसका अर्थ है। जैसे जल शब्द का अर्थ द्रवीभूत, पतला, शीत-स्पर्शवान् पदार्थ है, अग्नि शब्द का अर्थ उष्ण-स्पर्श युक्त, तेजोमय पदार्थ है, ऐसे ब्रह्मवस्तु ही 'ओम्' का अर्थ है। वाच्य वाचक का, शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। जैसे गुण गुणी में रहता है, ऐसे वाच्य—वाचक में, अर्थ शब्द में रहता है। भक्ति-भाव से भरपूर हृदय युक्त, भक्तों को यह निश्चय होना चाहिए कि जिस प्रकार अग्नि में रूप और उष्ण स्पर्श, जल में रस और शीत स्पर्श नित्य रहता है, इसी प्रकार ओम् वाचक में इसका वाच्य, ओम् शब्द ही में इसका अर्थ नित्यता से रहता कभी भी पृथक् नहीं होता।

कल्पना करो कि एक मन्दिर में प्रज्ञाचक्षुओं की एक मण्डली विराजमान है। एक देव नाम पुरुष को कार्यवश वहाँ जाना पड़ा है; किसी व्यक्ति के आने की आहट सुन कर वे सारे सूरदास उसके आस पास चारों ओर बैठ जाते हैं। एक सूरदास आगे हाथ फैलाकर देव को अंगुली से पकड़ कर पूछता है कि आप कौन हैं? उत्तर मिलता है 'मैं हूँ देव' ऐसे ही कोई भुजा, कोई पाँव और कोई शिर आदि छूकर नाम पूछ रहा है और वह आगन्तुक सबको 'मैं देव हूँ—'

यही उत्तर देता चला जाता है। तात्पय यही है कि देव नाम एक व्यक्ति का है। हाथ, भुजा और शिर से पाँव तक सारे अङ्ग उस व्यक्ति के अङ्ग हैं। सारे अङ्गों का समुच्चय वह व्यक्ति है, इसलिए जिस भी अङ्ग को, उस व्यक्ति के जिस भी देश को स्पर्श करोगे उसी अङ्ग और देश में 'देव' इस संज्ञा की व्याप्ति है। जितने देश में नामी होगा उतने ही देश में उसका नाम भी होगा।

परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। हमारे मन और अन्तःकरण में विद्यमान है, हमारी बुद्धि में भी उसका प्रकाश है। जिस मनोमन्दिर में हम 'ओम्' जपते हैं, जिस कण्ठ से 'ओम्' की ध्वनि गूंजती हैं, जिस जीभ पर 'ओम्' नाम विलास करता है, और जिन कानों में 'ओम्' की पवित्र ध्वनि पड़ती है। उन सब अङ्गों में परमात्मदेव परिपूर्ण-रूप से विद्यमान हैं। हमारी अस्थि, मज्जा और रोम२ में 'ओ३म्' रमा हुआ है, और तो क्या कहें, ओम् शब्द में ओम् ध्वनि में भी परमात्मा परिपूर्ण है।

जप-काल में भक्त को यह दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है, कि ईश्वर मेरे समीपतम है, वह मेरी प्रत्येक स्फुरणा को देख रहा है। जब मैं 'ओम्' शब्द का उच्चारण करता हूँ तभी वह परम-प्रेममय गुरु मुझे आशीर्वाद देता है, और मुझ पर परम प्रसन्न होता है।

'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'

उस 'ओम्' अक्षर का जप और 'ओम् अक्षर का अर्थ चिन्तन करने से चित्त एकाग्र हो जाता है। प्रणव का जप और प्रणव के अर्थों का चिन्तन भक्ति धर्म है। जप से ईश्वर में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। विश्वास की मात्रा बढ़ जाने से

भक्त भगवान् की कृपा का भागी बन जाता है। 'प्रणिधान क्लेशतत्कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरस्तमनुगृह्णाति' व्यास देव ने कहा है, कि भक्ति से आराधन किया हुआ ईश्वर भक्त पर अनुग्रह करता है, इसलिए 'ओम्' के जप में मन को लगाना, उस के भक्ति-भाव को बढ़ाना और अन्त में ईश्वर अनुग्रह का पात्र बनना, योग के जिज्ञासु मुमुक्षुओं का परम कर्तव्य है। यह निश्चित समझना चाहिए कि वह मार्ग योग का सर्वोत्तम साधक है, और परम योगी व्यासदेव के कथनानुसार 'अभिध्यानमात्रेण, ओम् का ध्यान करने ही से 'योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः फलञ्च भवति' योगी को बहुत समीप (शीघ्र) समाधि का लाभ और फल, मिल जाता है।

पर इस भक्ति में प्रेम, अचल विश्वास, दृढ़ धारणा और निर्दोष श्रद्धा चाहिए।

ओम् स्मर

जिस नाम का कोई जप करता है, उसमें उसका प्रेम अवश्य होता है। उसके चित्तमें प्रेमी की चितवन सदा बनी रहती है। चिन्तन शब्द का होता है, और शब्द नाम है। इसलिए चिन्तन करने का अर्थ मानस जप है। यदि वाणी के साथ मन भी है तो वाणी का जप बुरा नहीं है, अच्छा है, परन्तु फिर भी वाचिक जप की अपेक्षा भगवान् मनु की आज्ञानुसार बिना होंठ हिलाये जो जप किया जाता है, वह 'उपांशु' जपहै। और सौगुणा अधिक फलदाता है। मानस जप का महत्व सहस्रगुणा अधिक है। मानस जप में जितना शीघ्र मन रुकता है उतना वाचिक और उपांशु में नहीं। 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' इस पतंजलि सूत्र के अर्थ में व्यासदेव कहते हैं, कि 'तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थ

च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते' प्रणव को जपते हुए, और प्रणव का अर्थ चिन्तन करते हुए इस योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इस पर व्यासदेव ग्रन्थान्तर का प्रमाण देते हैं 'जप से चिन्तन करे और चिन्तन (ध्यान) के पश्चात् फिर जप करे, जप और ध्यान की सिद्धि से परमात्मा का प्रकाश होता है।

सहजाभ्यास

श्वास-प्रश्वास के साथ अथवा बिना सांस में वृत्ति लगाए 'ओम्' का जाप, चिन्तन और ध्यान सहजाभ्यास है। इस अभ्यास का करना, आबाल वृद्ध, सबल, निर्बल सब नर नारियों के लिए सहज है, सुगम है। अन्य अभ्यास के मार्गों में बहुत कठिनाइयां हैं। आठ पहर चौबीस घण्टे संसार के काम धन्धों में फँसे हुए स्त्री पुरुषों, बुढ़ापे के बोझ से जर्जरीभूत जनों, दुबल, क्षीण, दीन हीन देह युक्त मनुष्यों, रोग के दारुण दुःख से पीड़ित प्राणियों और कुसंगत, कुसंस्कार तथा विषय वासना से सदा चलायमान चित्त वाले गृहस्थियों से कठिनतायुक्त योग साधन सिद्ध होने से कितने दुष्कर हैं, इसका समझना सबके लिए सुगम है। अतएव संसार समुद्र में जप-योग का जहाज एक ऐसा जहाज है कि जिसमें बैठकर राजा, रङ्क, मूर्ख, पण्डित, लूला, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, दुर्बल, दुःखिया और बूढ़ा, बच्चा, सभी पार जा सकते हैं। इस साधन के सभी अधिकारी हैं। इस साधन के साधने से अन्य सारे साधन आप से आप सिद्ध होने लग जाते हैं। सारे गुण सम्पूर्ण कल्याण और सर्व सफलताएं इसके अभ्यासी में ऐसे प्रवेश करने लग जाती हैं जैसे महासागर में नदियां।

प्रणव के उपासक को चाहिए कि प्रातःकाल नींद से

जागते ही हृदय क्षेत्र में विचार मात्र उत्पन्न होने से पहिले ओम् का जप करने लग जाय, तत्पश्चात् आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर सन्ध्या समय भी प्रणव का पाठ करे। प्रति दिन नियम पूर्वक दो घड़ी पर्यन्त प्रणव पवित्र का पाठ करने वाले अभ्यासी को प्रभु प्रेम का परिणाम स्वयं प्रतीत होने लगेगा। प्रणव पाठ का सर्वोत्तम समय आधीरात, वनस्थान और प्रातःकाल है। पर परम प्रेम में समय की मर्यादा और नियम नहीं रहता, इसलिए चलते-फिरते उठते-बठते जब अवसर हाथ आवे अपने मनके तीर को प्रणव के लक्ष्य में खींच खींच कर लगाते रहना चाहिए। चारपाई पर पड़े २ जब तक नींद न आवे, ओम् का ध्यान करते रहना बड़ा उपयोगी है। एक तो इससे शीघ्र नींद आ जाती है, दूसरे स्वप्न अथवा कुस्वप्न कम आते हैं और तीसरे सर्वोत्कृष्ट लाभ यह है. कि अभ्यासी जब तक सोता रहेगा, तब तक प्रणव पवित्र का संस्कार उसके मस्तिष्क में, उसके अन्तःकरण में, उसके अन्तरात्मा (सब्जेक्टिव माइण्ड) में स्फुरित रहेगा, जिससे सारी काया भक्तिमयी हो जाती है। सम्पूर्ण खोटे संस्कार मिट जाते हैं। यहाँ तक इस साधन के सिद्ध होने पर बिना प्रयत्न किए प्रणव पाठ निरन्तर रहता है, और शरीर योगमय बन जाता है।

परमात्मा के प्रेमी जन जब किसी अद्भुत दृश्य को देखते हैं, जब किसी घटना का अवलोकन करते हैं, तब वे उसी समय ओम् का लम्बायमान उच्चारण करते हैं. इससे मनको ऐसा प्रमोद होता है, जो केवल अभ्यासगम्य है। जिस समय चित्त चंचल हो, अशान्त हो, प्रमाद से पूर्ण हो, और प्रणव पाठ से पराङ्मुख होता जाता हो, तो उस समय भी 'ओम्' का दीर्घ उच्चारण इसे शान्त और स्थिर बना देता है। किसी

एकान्त स्थान, नदी के किनारे, शून्य जङ्गल, अथवा वनमें और जहाँ भी मनमें सङ्कोच उत्पन्न न हो, वहाँ प्रणव पवित्र का लंबे स्वर से गायन और बार बार गायन मनकी सारी मलिनता को मिटाकर उसे शुद्ध स्थिर, प्रशान्त भाव प्रदान करता है। ऊपर कहे प्रणव गायन से भक्त को देह में आनन्द की एक विचित्र लहर उठती और सुख की एक अद्भुत धारा सी बह जाती है, जिसका वर्णन वर्णनातीत है।

प्रणव का बार २ पाठ

जो शब्द बार २ कहे जाते हैं, वे स्मरण शक्ति का अङ्ग बन जाते हैं। जितनी प्रबल लगन से कोई शब्द बार २ स्मरण किया जाय, उसका उतना ही प्रबल प्रभाव भी स्मृति पर पड़ेगा। राग विद्या सीखने वाले लोग चलते-फिरते, कार्य करते, सङ्गीत के सुरों का ही अलापते रहते हैं। लगन वाले विद्यार्थी अपने पाठों का स्वप्न में भी दोहराते रहते हैं। मनुष्य की चित्तवृत्तियां कुँए के जल की भांति हैं। कुँए में रहते पानी का कोई आकार नहीं, वह सम है, और एक ही स्वाद वाला है, पर ज्योंही रहट की घड़ियों द्वारा खेतों की त्रिकोण, चतुष्कोण आदि क्यारियों में पड़ता है, तो तुरन्त तदाकार हो जाता है। मिर्च निम्ब,नीबू, जामन,आम, नारङ्गी और संतरा आदि पेड़ों की जड़ों में जाकर अपना स्वाद भी बदल डालता है। चित्त वृत्तियां भी जैसे अर्थों वाले शब्दों में डोलती हैं, वैसे उनके आकार बन जाते हैं, और उन शब्दों के अर्थों के भावों और प्रभावों से सर्वथा प्रभावित हो जाती हैं। जिस रस रङ्ग के शब्द कोई गायगा, वही रस रङ्ग उसकी चित्त चादर पर अवश्यमेव चढ़ जायगा, इसलिए समझना चाहिए कि जो भक्तजन पूर्ण प्रेम और प्रबल भावना से

भगवान के नाम प्रणव का स्मरण करते रहते हैं, कालान्तर में उनकी वृत्तियाँ प्रणवाकार हो जाती हैं। उनकी स्मृति में न उतरने वाला प्रणव का रङ्ग और उनके मनमें न फीका होने वाला प्रणव का रस बस जाता है।

नव सुत सिमरैं सुरभि ज्यों, त्यों सुमिरो भगवान।
पनिहारी ज्यों कलश का, करो ओम् का ध्यान॥
सती विरह - सन्तापिता, सुमिरे पति मन लाय।
ओम् नाम सिमरो सदा, संशय सकल मिटाय॥
भूखा भोजन को भजे, रंक भजे ज्यों दाम।
सदा प्रेम से सिमरिये, ओम् ईश का नाम॥
मीन हीन जल से यथा, जल हो में मन दे।
एक भावना से तथा, ओम् नाम भज ले॥
आतुर सिमरे औषधि, ज्यों बंधुआ निस्तार।
ओम् नाम त्यों सिमरिए, तीन लोक का सार॥
मन मन्दिर में जगमगे, ओम् नाम जग जोत।
अघतम का तब नाश हो, बहे सुखों का स्रोत॥
रस है तीनों वेद का, ओम् नाम अभिराम।
भाव भक्ति से जो भजे, होवे पूरण काम॥

परमात्मा भीतर से प्रकाशित होता है

माना कि पानी २ कहने से प्यास नहीं बुझती, केवल रोटी के पाठ से भूख नहीं मिटती, और अग्नि शब्द के उच्चारण से मुख भी नहीं जलने लग जाता, परन्तु इस वार्ता से किस बुद्धिमान् का नकार है, कि पानी २ आदि शब्दों को कोई तभी पुकार करता है, जब इन वस्तुओं के लिए उसके मनमें महामांग होती है। कोई भी विचार से देखे तो उसे प्रतीत होगा कि जगत्

में जातियों की भौतिक प्रभुता के मधुर फल इस महामाँग ही की बेल से मिले हैं। इसी मानस माँग में सारी उन्नति निवास करती है, और इसी मनोरथ रूप माँग से प्रेरित होकर मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।

जो भक्त परमात्मदेव के पवित्र ओम् नाम के बार बार जपने में मनको लगाते हैं वे परमात्मदेव की प्राप्ति की, अपनी लग्न प्रकाशित करते हैं। बार २ नाम के पाठ से भक्त के चित्त में समाई हुई अनन्त चेतन की चाह प्रकट होती है। बहुत दूर से स्थित प्राकृत पदार्थों के नाम का पाठ फलसिद्धिरूप न हो, परन्तु फलसिद्धि का प्रबल निमित्त कारण और सिद्धि प्राप्तकर्ता की क्रिया का उपादान कारण अवश्यमेव है।

परमात्म प्राप्ति की कथा भौतिक पदार्थों की प्राप्ति से सर्वथा भिन्न है। प्रकृति के स्थूल पदार्थ कर्ता के मन से प्रेरित उसकी स्थूल इन्द्रियों की स्थूल क्रिया से प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्राप्तकर्ता व्यक्ति से बाहर के पदार्थ उसकी बाहर की क्रिया को अपेक्षा रखते हैं, परन्तु परमात्मा सूक्ष्मतम है, सबके भीतर परिपूर्ण है इसलिए विवेक, विचार, ज्ञान और भक्ति आदि साधनों ही से उसकी प्राप्ति होती है, यह सर्व शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है।

उक्त विवेकादि साधन अन्तरङ्ग साधन हैं। ये साधन भक्त के अपने आत्मा का प्रकाश हैं। सच तो यह है कि सबका अन्तरात्मा, परमात्मा भक्त के आत्म मन्दिर में विराजमान है। उसकी प्राप्ति के लिए केवल प्रेम तैल से भरा हुआ ज्ञान का प्रदीप्त दीपक चाहिए। रोटी २ पुकारता हुआ भूखा भले ही भूखा रह जाय, क्योंकि उसका भोजन उससे दूर है, पर भक्त लोग तो जिस चित्त में ईश्वर का चिन्तन करते हैं, वहीं उनका आत्मिक भोजन है, और जिस रसना से सारे रसों के सार ओम्

नाम को जपते हैं, उसी रसना में, उसी नाम में, परम तृप्तिकारक अमृत रस विद्यमान है। उस अमृत रस को अनुभव करने के लिये केवल अभ्यास की आवश्यकता है, और मानस वाचिक जप ही का नाम, यहाँ अभ्यास है।

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्नीति पूरुषः"। बचपन से भेड़ों के गल्ले में विचरने वाले सिंह पुत्र को अपने भीतर ही भूला हुआ सिंहपन प्राप्त करने के लिये 'मैं सिंह हूँ' इस पाठ को बार २ जपने की बड़ी आवश्यकता है। इसी पाठ स्मरण से उसे विस्मृत सिंहसत्ता का बोध होगा। अपने आपको विनाशी और मरण-धर्मा मानने वाले मनुष्य को उस अमर अविनाशी स्वरूप का बोध केवल ज्ञान से सम्भव है। आत्मज्ञान आत्मगुणों के बार २ चिन्तन से होता है। "मैं अमर अविनाशी, अछेद्य, अभेद्य और चेतन हूँ" इत्यादि आत्म स्वरूप बोधक शब्दों के बार २ जाप से अपने भीतर भूला हुआ स्वरूप अपने भीतर ही उपलब्ध होता है। सारांश यह कि जैसे अपने आपको विस्मृत सिंह को अपनी सत्ता का ज्ञान, आत्म-स्मरण से सम्भव है, और आत्मा को आत्मबोध आत्मचिन्तन से अपने भीतर होता है, ऐसे ही अपने अन्तरात्मा में व्यापक परमेश्वर देव का ज्ञान उसके सच्चिदानन्द आदि गुण युक्त ओम् नाम के बार २ स्मरणाभ्यास से स्वात्मा ही में सम्भावित है। किसी शब्द का बार २ चिन्तन मानस जाप के लिये पर्य्यायवाची शब्द मात्र ही समझना चाहिए।

चिन्तन कर मम मना ओम् नाम अनमोल।
ज्योति जागती देख ले चित्त किवाड़ें खोल॥
चिन्तन के प्रभाव से कायर वीर हो जाय।
स्यार सिंह समता गहे भय भीरुता नसाय॥

ऊँच नीच अच्छा बुरा सज्जन दुर्जन पाप ।
जैसा जिसकी भावना वैसा हो वह आप ॥
चित्त में चिन्तन लग्न से जिसमें जिसका हो ।
कोटि विघ्न को बाध के निश्चय पहुंचे सो ॥

'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु" प्रभाव

इस बात को सभी मनुष्य मानते है, कि अशुभ संकल्पों, अधम विचारों; नीचभावों, और अपवित्र चिन्तनों के उत्पन्न होने पर मनुष्य का मन मैला हो जाता है। शुभ सङ्कल्पों और शुद्ध भाव आदिकों के उत्पन्न होने से मनुष्य का मन निर्मलता और पवित्रता प्राप्त कर लेता है। किसी दुष्ट नरनारी के स्मरण से चित्त सागर में पापके तरङ्ग का उत्पन्न होना बहुत ही सम्भावित है,ऐसे ही किसी सन्त,सज्जन,भगवद्भक्त व्यक्ति के ध्यान से अपने भीतर शुभ भाव,शुभ सङ्कल्प और सज्जनताकी लहरों का उठना स्वाभाविक है। सभी गुणों के समूह पवित्र ओम् नाम के समान शुद्ध और निर्मल दूसरा कोई संकल्प, कोई भाव कोई चिन्तन और विचार नहीं है। अन्तःकरण की सम्पूर्ण वृत्तियों में सर्वोत्तम वृत्ति, परम पवित्र वृत्ति—भक्ति है । परम पवित्र परमात्म-देव है, अतएव ओम् पवित्र के चिन्तन मात्र से मनुष्य के मन में पवित्रता की धारा बहने लगती है। मन की मलिनता घुलर कर दूर होने लग जाती है। ओम् नाम का प्रभाव सम्पूर्ण प्रभावों से प्रबल है।

विषूचिकादि महारोगों के दिनों में सर्व साधारण को वैद्य लोग शिक्षा दिया करते हैं कि महारोग का ध्यान व चिन्तन नहीं करना चाहिए। इसके ध्यान से हृदय दुर्बल होने लगता है। इसकी रुचि रोग की ओर झुक पड़ती है, और अन्त में मनुष्य रोग के

पंजे में पड़ जाता है। प्रसिद्ध वैद्य मण्डल में यह वाद माना गया है कि रोगों का बीज रोगों का ध्यान है। जो प्रत्येक पदार्थ के उपयोग में वात, पित्त, कफ की प्रतिमा देखते रहते हैं, जो पांव २ पर शकुन सोचते रहते हैं, जो बात २ में शीत उष्ण का विचार रखते हैं, मित्र मण्डलमें बैठ कर जो अपने रोगोंकी कथायें किया करते हैं, और जिनकी काया में रोगके नाम मात्रसे कपकपी तथा फुरफुरी उठती है, वे लोग अपने ऊँचे स्वर से रोगों को निमंत्रण देते हैं। नाना रोग उनकी देह में बने ही रहते हैं। देशी विदेशी सब चिकित्सा कर लेने पर भी उनका पिण्ड छूटने नहीं पाता।

जब रोग के ध्यान का इतना प्रभाव है, कि उसका चिर तक ध्यान रहने से हमारी देह का सर्वनाश तक संभव हो सकता तो क्या कोई भी ऐसा विश्वासी होगा, जो यह मानता हो कि ओम् चिन्तन और ओम् नाम के ध्यान का प्रभाव हमारी काया हमारे अन्तःकरण और आत्मा पर कुछ भी नहीं पड़ता! और यह ध्यान रोग के ध्यान से भी गया बीता है? अहो! जिस ओम् के ईक्षण (इच्छा) से परमाणु २ तक प्रभावित है, और जो सबका अन्तरात्मा है, उसके चिन्तन और ध्यान के प्रभाव सदृश अन्य किस वस्तु का प्रभाव हो सकता है!

सर्व साधारण की यह मानी हुई बात है कि खोटे संस्कारों से मनुष्य का मन मलीन होजाता है। किसी को कुवचन कहने से और गाली देने से मनुष्य का हृदय दूषित और अन्तःकरण कलुषित हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी जन पर शुभ सस्कार डाले जायेंगे, तो वह शुद्ध हो जायगा, उसके मन से कुसंस्कारों की धूल धुल जायगी। शुभ शब्द उच्चारण करने से पवित्र पदों के पाठ से, सत्य हित और मधुर वचन बोलने से

मनुष्य के अन्तःकरण की कालिख और हृदय की अपवित्रता अवश्यमेव दूर होवेगी।

'ओम्' सच्चाइयों का केन्द्र, परम पवित्रताओं का प्रवाह और सकल शुभ संस्कारों का मूल कारण है, इसलिए जो पवित्रता, जो विमलता, जो शुभ, ओम् गान, ओम् जप, ओम् चिन्तन, ओम् आराधन और ओम् ध्यान से प्रभु प्रेमी को प्राप्त होता है, वह अतुल है, वर्णन से बाहर है, इसे केवल अभ्यासी जन जान सकते हैं।

महा मिथ्यावादी के साथ भी यदि असत्य वचन से व्यवहार किया जाय, तो वह खिजने लगता है। छली, कपटी, दम्भी; कुसंस्कारी से भी यदि छलादि से कोई बर्त्ते, तो उसके क्रोधों की कोई सीमा नहीं रहती। कितना ही कोई गन्दी गाली बकने वाला क्यों न हो, पर अपने लिए गाली सुनना पसन्द नहीं करता। रात दिन दूसरों की मार धाड़, लूट खसूट में सुख मनाने वाले तस्करादि अत्याचारी जन, जब उनके सङ्ग ऐसा वर्त्ताव होने लगे, तब मरने मारने पर उतर आते हैं, और अपवित्र से अपवित्र मनुष्य भी अपने लिए अपवित्रता स्वीकार नहीं करता, इससे परिडत लोग इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सारे संसार में किसी भी मनुष्य की सहानुभूति पाप, अपवित्रता और अशुभ के साथ नहीं है, क्योंकि प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने लिए दूसरों से शुभ चाहते, पुण्य कर्म मांगते, और पवित्र व्यवहार की प्रतीक्षा करते हैं, और यह भी सभी जानते हैं, कि रोग मात्र को कोई नहीं चाहता। किसी रोग से कोई भी जन सहानुभूति नहीं करता।

जब मरुस्थल में खड़े एक क्षुद्र पेड़ के पत्ते पर पड़े हुए जल विन्दु को भाँति, पापमय सङ्कल्प अशुभ वचन, मलिन

विचार, दुष्ट संस्कार और सम्पूर्ण रोग निःसहाय हैं, सहानुभूति रहित हैं परन्तु तब भी इनका प्रभाव इतना प्रबल माना जाता है कि इनके चिन्तन और ध्यानादि ही से मनुष्य अपवित्र मलीन तथा रोगी हो जाता है।' तब सोचना चाहिए कि उस 'ओम्' के चिन्तन, जप और ध्यान का कितना प्रबल प्रभाव होगा, जिसके साथ सारे संसार की सहानुभूति है, सब सन्तों के शुभ सङ्कल्प, सकल महात्माओं की मङ्गल कामनाएं अखिल भक्तों की शुद्धि भावनाएं हैं और जिनके सर्वोपरि सहायक परमात्म देव स्वयं हैं।

ओम् उपासना का फल

सकल अदृश्य अमूर्त्त पदार्थों का ज्ञान शब्द द्वारा होताहै, इसलिए ओम् नाम का स्मरण ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र कारण है। यह स्मरण शुभ और पवित्रता प्रदान करता है इस ओम् जप गङ्गा में स्नान करने से मनके सारे मैल उतर जाते हैं। पूर्व जीवन में कितना ही कोई पापी क्यों न रहा हो, पर ओम् के निरन्तर पाठ से पवित्र हो जायगा। ओम् ध्यान से प्रत्यक् चेतना ऽधिगमोऽप्यन्तरा या भावश्च' अन्तरात्मा का ज्ञान, प्राप्ति और रोगादि विघ्नों का विनाश होगा। श्वेताश्वर उपनिषद् में कहा है 'अपनी देह (हृदय) को अरणी लकडी बनाकर ओम् नाम को दूसरी अरणि बनावे। इन दोनों को बार बार रगड़ने (हृदय से ओम् जपने) से परमात्म देव के दर्शन करे।' इस नाम के अभ्यासी के नेत्र पलास के पत्ते की भाँति विस्तृत और खिले हुए दिखाई देंगे। उनमें प्रेम परिपूर्ण होगा, ओम् भक्त का मुख-पद्म प्रफुल्लित, सौम्य और तेजोमय रहेगा। ओम्

उपासक की वाणी मधुवर्षिणी और आकर्षिणी होगी। और ओम् आश्रित का हृदय प्रसन्नता से भरपूर हो जायगा।

जैसे चुम्बक से मिलकर लोहा भी चुम्बक हो जाता है, ऐसे ही ओम् की उपासना से उपासक परमात्म देव के दिव्य गुणों को धारण करके परमानन्द को उपलब्ध कर लेता है।

—●—

ओंकार-स्तोत्र

[श्री पं० शिवशंकरजी, काव्यतीर्थ कृत]

सुखे वा दुःखे वा परिषदि नृणां वाति विजने,
गृहे वा बाह्ये वा गिरि-सुशिखरे वा सुपुलिने।
दिने वा रात्रौ वा उषसि दिवसा तेऽथ रमणे।
जपध्वं हे धीराः सुमति विमला ओं हृदि सदा॥

अर्थ—सुख में वा दुःख में, मनुष्यों की सभा में वा निर्जन स्थान में, घर में वा बाहर, पर्वत के सुन्दर शिखर पर या नदी के मनोहर तट पर, दिन में या रात्रि में, प्रातःकाल वा रमणीय सायंकाल में, हे सुमति से विमल, धैर्यशील विद्वान् पुरुषो! तुम सदा ओम् ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना किया करो।

रवौ चन्द्रे ज्योतिर्विविध-गण रम्ये वियति च,
समीरेऽग्नौ भूमाविह निखिल-देहे स्वसुयुते।
वयं पश्यामस्ते सुभगमहिमानं समुदितं,
जपध्वं हे धीराः सुमति विमला ओं हृदिसदा॥२॥

अर्थ—सूर्य में, चन्द्रमा में, विविध नक्षत्र गणों में रमणीय आकाश में, वायु अग्नि और भूमि में सुन्दर प्राण संयुक्त अखिल

शरीर में, हम सब आपकी ही सुभग महिमा को प्रकाशित देखते हैं। हे उत्तम बुद्धिवाले सज्जन पुरुषो ! तुम सदा इस ओम् की ही पूजा करने वाले बनो।

स नो बन्धुः पाता भुवनमखिलं यो रचयति,
प्रजानां संहारे पुनरपि स एवाति बलवान्।
तमेकं जानीध्वं सकल सुखदं, दुःख हरणं,
जपध्वं हे धीराः सुमति विमले ओं हृदि सदा ॥३॥

अर्थ—वही हम सब का बन्धु और पालक है, जो कि अखिल भुवन को रचता है और जो कि सब प्रजाओं का पालन एवं संहार भी करता है। हे पुरुषो ! तुम उसी एक प्रभु को जानो वही सब सुखों का दाता और सब के, सब प्रकार के दुःखों को हरण करने वाला है। हे विद्वानो ! तुम उसी 'ओम्' प्रभु का यजन करो।

इमं देवं रुद्रं गणपतिमजं विष्णुमजरं,
सुपर्णं ब्रह्माणं शिवमदितिमीशानमनघम्।
तमेकं व्याचष्टे बहुविध सुनाम्ना कुशलधीः,
जपध्वं हे धीराः सुमति विमले ओं हृदि सदा ॥४॥

अर्थ—इस एक देव को रुद्र, गणपति, अज, विष्णु, अजर, सुपर्ण, ब्रह्म, शिव, अदिति, ईशान, अनघ आदि विविध नामों से सब विद्वान् जानते बखानते हैं। हे सज्जनो ! यह ओङ्कार ही यजन करने योग्य है। इसी का जप करो।

त्वमेकः पूज्योऽसि त्वमिह सदयस्त्यं हितकरः,
त्वमेकः ध्येयोऽसि त्वमसि रमणो योगि हृदये।
रमस्व त्वं चित्ते त्वमसि मम चित्तं बहुमतं,
जपध्वं हे धीराः सुमति विमले ओं हृदि सदा ॥५॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! तू ही पूज्य है। तू ही करुणाकर है। तू ही सबका हितकारी है। तू ही एक ध्येय है। योगियों के हृदय में तेरा ही प्रकाश होता है। हे भगवान् ! मेरे चित्त में भी तू सदा ही विराजमान रहे। तू ही मेरा महान् धन है। हे धैर्यवान् विद्वानो ! आओ, इस ओंकार का भजन करके आत्म-कल्याण को प्राप्त करो।

* ओंकार भजो *

ओंकार भजो, अहंकार तजो,
　　पछताओ नहीं जो भई सो भई।
पर का दुख देख सहाय करो,
　　करनी शुभ औसर पाइ करो।
बिगरै नहिं धर्म उपाइ करो,
　　अब लों तुम नीद लई सो लई ।।ओंकार०।।
अविचार, अनीति तजो मन से,
　　मद मस्त रहो मत यौवन से।
उपकार करो तन मन धन से,
　　इतनी वय बीत गई सो गई ।।ओंकार०।।
धरि ध्यान सनातन चाल चलो,
　　अघ रूप हुताशन में न जलो।
अब तो अपने दोउ हाथ मलो,
　　अबलों विष बेलि बई सो बई।।ओंकार०।।

ओमाराधन

[महाकवि नाथूराम 'शंकर' शर्मा]

ओमऽनेक बार बोल प्रेम के प्रयोगी।
है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद।
भूलते न पूज्यपाद वीतराग योगी ॥ ओमऽनेक ॥ १॥
वेद को प्रमाण मान, अर्थ योजना बखान।
गा रहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग भोगी ॥ ओमऽनेक ॥२॥
ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त।
त्यागते अघी अशक्त, पोच पाप रोगी ॥ ओमऽनेक ॥ ३ ॥
शङ्करादि नित्य नाम, जो जपें विसार काम।
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी ॥ओमऽनेक ॥४॥

ओमर्थ ज्ञान

[महाकवि 'शंकर'जी]

ओम् अक्षर अखिलाधार जिसने जान लिया।
एक अखण्ड अकाय असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्ध, विधाता, विश्व-विश्व भरतार—
को पहचान लिया ॥ ओम् ॥१॥
भूतनाथ, भुवनेश, स्वयंभू, अभय, भाव-भण्डार,
नित्य, निरंजन, न्याय-नियन्ता, निर्गुण निगमागार—
मनु को मान लिया ॥ ओम् ० ॥२ ॥
करुणाकन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन-करतार,
परमानन्द-पयोधि, प्रतापी, पूरण परमोदार—
से सुख दान लिया ॥ ओम् ० ॥३॥
सत्य, सनातन प्रभु 'शङ्कर' को समझा सबका सार,
अपना जीवन बेड़ा उसने भवसागर से पार—
करना ठान लिया ॥ओम् ० ॥४॥

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

आर्य जगत् में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक

तपोभूमि

शरीर, मन और आत्मा को उन्नत करने वाली, महिलाओं और बालोपयोगी सामग्री से सज्जित, कविता, कहानी, एकाङ्की, लघुकथा और विवेचनात्मक लेखों से युक्त :—

इस सात्विक प्रकाश को अपने परिवारों में प्रवेश कराइये।

वार्षिक मूल्य ३) रु० मात्र तथा

६०० पृष्ठों के बृहदाङ्क सहित ६) ५५ मात्र।

द्रष्टव्य—होता सदस्यों को जो १०) वार्षिक या १०१) रु० एकबार में देने पर बन सकते हैं, बृहदाङ्क और 'तपोभू अतिरिक्त सत्य प्रकाशन के प्रकाशनों पर २५ प्रतिशत क मिलेगा तथा वे प्रकाशन समिति के सदस्य माने जायेंगे।

सन् १९६४ के बृहदाङ्क 'शुद्ध रामायण अङ्क' तथा सन् के 'महाभारताङ्क' की सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है।

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, मथुरा।

ईश्वरी प्रसाद 'प्रेस' एम. ए. स्वामी एवं मुद्रक वैदिक प्रेस मथुरा ने सत्यप्रकाशन, मथुरा के लिये छापकर प्रकाशित किया।